प्राक्कथन

कामायनी आधुनिक काल का एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। भाषा, भाव एवं शैली की दृष्टि से महाकाव्यों में इसका स्थान अत्यन्त ऊंचा है। इसमें वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ का जो सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, वह बड़ा ही मनोहारी है। मैंने इस काव्य को जितना पढ़ा, उतना ही रस उपलब्ध हुआ। अनेक स्थल तो काव्य-गुण की दृष्टि से बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं तथा उनमें अलंकारों की योजना भी दर्शनीय है।

इसमें मानसिक भावों के माध्यम से कथा के प्रसरण ने रूपक की योजना कर और भी चमत्कृति उत्पन्न कर दी है। यद्यपि इस रूपक ने भावार्थ में यत्र-तत्र दुरूहता ला दी है तथापि मनोहारिता एवं रसोद्भूति में कोई न्यूनता नहीं होती, यह एक विचित्र बात है।

यह लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ प्रधान काव्य है, अतः विद्वान् सहृदयों के आनन्द के लिए इसमें पर्याप्त सौन्दर्य भरा हुआ है। इसी सौन्दर्य से प्रभावित होकर मैंने सोचा कि इसमें लाक्षणिक और व्यञ्जक शब्द-प्रयोग तथा अलंकार छांटे जायें और अपनी स्वल्प मति के अनुसार उनका विश्लेषण कर विद्वत्समाज के समक्ष उन्हें प्रस्तुत किया जाय। इसी के परिणामस्वरूप मैंने इस 'कामायनी में शब्दशक्ति-चमत्कार' नाम्नी पुस्तक का निर्माण किया।

पुस्तक के प्रथम अध्याय में मैंने केवल थोड़े से ही सुन्दर वाच्यार्थ प्रदर्शित किये हैं। दूसरे अध्याय में मुझे यावन्मात्र लाक्षणिक प्रयोग मिले, उनका साभिप्राय विवेचन है तथा साथ ही लक्षणा-भेद भी निर्दिष्ट किये गये हैं। तृतीय अध्याय में कामायनी में उपलब्ध समस्त व्यंग्यार्थों को दिया गया है। संभव है कि इनके अतिरिक्त और भी अनेक लाक्षणिक एवं व्यंजक प्रयोग रह गये हों, जहाँ तक मेरी बुद्धि न पहुँची हो। इसी प्रकार चतुर्थ अध्याय में मैंने इस काव्य में प्रयुक्त सभी अलंकारों का विश्लेषण किया है, परन्तु उनके अतिरिक्त और भी अनेक अलंकार होंगे, जिनका अन्वेषण किया जा सकता है।

इस पुस्तक में अलंकारों को इसलिये दिया गया है कि अलंकार वाच्य हों या व्यंग्य, भावार्थ सभी में व्यंग्य होता है; अतः शब्दार्थ का चमत्कार वहाँ भी है।

यह निर्विवाद है कि विषय अत्यन्त दुरूह है क्योंकि लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ एवं अलंकारों की वास्तविकता तक पहुँचना सुगम नहीं होता तथापि इस दुस्साध्य प्रयत्न को मैंने अपने हाथ में लिया। परन्तु इसमें कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह तो विद्वानों के निकष का विषय है। संभव है कि कतिपय स्थलों पर सावधानी रखने पर भी कोई त्रुटि रह गई हो और यह भी संभव है कि कहीं अशुद्धि रह जाने से भाव-वैपरीत्य हो गया हो, इसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ तथा विनम्र निवेदन करता हूँ कि कृपया वे त्रुटियाँ मुझे सूचित कर दी जायें, जिससे मैं उनसे अवगत हो सकूँ।

२६ जनवरी '६३ विमलकुमार जैन

: १ :

कामायनी में अभिधा-सौन्दर्य

मनुष्य की वाणी अक्षर, शब्द एवं वाक्यों के सामंजस्य से व्यक्त होती है इनमें से अक्षर मूल ध्वनि का नाम है। अतः शब्द-रचना की दृष्टि से उनका महत्व होते हुए भी आशय की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है तथा वाक्यों का निर्माण सार्थक शब्दों के प्रयोग से होता है, अतः पूर्णाशय की अपेक्षा से तो उनका बड़ा महत्व है, परन्तु भाषा के आधार के महत्व से उतना नहीं जितना शब्द का है, यथा भवन में जितना महत्व रोड़े एवं रवों का नहीं होता, जितना ईंट का होता है। इससे सिद्ध होता है कि भाषा में शब्द का महत्वपूर्ण योगदान है। ये शब्द भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं, अतः आचार्यों ने मानवीय भाषा पर गम्भीर चिन्तन करने के पश्चात् शब्दों को तीन भागों में विभक्त किया है। आचार्य मम्मट लिखते हैं :—

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा।[1]

अर्थात् काव्य में शब्द तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, लाक्षणिक एवं व्यञ्जक।

ये तीनों प्रकार के शब्द क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को प्रकट करते हैं। इनमें से वाच्यार्थ, मुख्यार्थ एवं संकेतित अर्थ भी कहलाता है। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वाचक शब्द जिस मुख्यार्थ या संकेतितार्थ को प्रकट करता है, उसे ही वाच्यार्थ कहते हैं।

शब्दों में उपर्युक्त भिन्न-भिन्न अर्थों को बोधित करने की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ होती हैं क्योंकि एक ही शक्ति से शब्द समस्त अर्थों को प्रकट नहीं कर सकता। जिस प्रकार एक ही मनुष्य अध्यापन, पाचन एवं सीवन आदि के व्यापारों को एक ही शक्ति से सम्पादित नहीं कर सकता वरन् उनके सम्पादन के निमित्त तत्तद्विषयक शक्तियों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शब्द भी पृथक्-पृथक् अर्थों

---

१. काव्य प्रकाश, उल्लास २, श्लोक ६

जाता है न कि चोटी। कभी-कभी शब्द-विवृति अर्थात् शब्द की व्याख्या से भी शक्तिग्रह होता है, जैसे—'पञ्च व्रतों में अपरिग्रह भी एक व्रत है' इस वाक्य में जब तक अपरिग्रह शब्द की व्याख्या न की जाय तब तक मुख्यार्थ का ग्रहण न होगा। कहीं पर सान्निध्य मुख्यार्थ का निर्णायक होता है, जैसे—'नंदनन्दन और वृषभानुजा में प्रगाढ़ प्रेम था' इस वाक्य में नंदनन्दन के सान्निध्य से वृषभानुजा से राधा ही अर्थ लिया जायगा न कि गाय।

इस प्रकार संकेतग्रहण के अनेक साधन हैं। इन उपायों के अतिरिक्त संकेतग्रह के विषय भी अनेक हैं। साहित्य-दर्पण कार ने लिखा है—

संकेतो गृहते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च।[1]

अर्थात् जाति, गुण, द्रव्य या यदृच्छा तथा क्रिया में संकेत-ग्रहण होता है। जैसे गौ कहने से पशु की एक जाति विशेष ही ग्रहीत होगी तथा 'श्वेत गौ' कहने से श्वेत गुण वाली गौ ही ली जायगी न कि कृष्णादि। इसी प्रकार द्रव्य के नाम से वही द्रव्य ग्राह्य होगा, यथा हिमालय से हिमालय का ग्रहण होगा और विन्ध्याचल से विन्ध्याचल का। क्रिया में अर्थ का ग्रहण उसके आरम्भ से अन्त तक होता है, जैसे पाक से तात्पर्य है चूल्हा जलाना, आटा गूँदना, रोटी पोना, तवे पर डालना तथा पुनः सेकना आदि क्रियाओं का समाहार।

इस प्रकार अभिधा अनेक उपायों से अनेक विषयों में संकेत ग्रहण करा कर वाच्यार्थ को प्रकट करती है। अब हम कामायनी में अभिधा से व्यक्त कतिपय अर्थ उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

व्याकरण से, यथा—

वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ?
स्वप्न रहा या छलना थी ![2]

इसमें उत् प्रत्यय पूर्वक मत्त शब्द से 'उन्मत्त' शब्द का निर्माण हुआ है। व्याकरण के अनुसार उपसर्ग शब्द के अर्थ में विशेषता ला देते हैं। श्री भट्टोजि-दीक्षित ने लिखा है—

उपसर्गास्त्वर्थविशेस्य द्योतकाः।[3]

अर्थात् उपसर्ग अर्थ विशेष के द्योतक होते हैं। इसी की पुष्टि करते हुए वे आगे लिखते हैं—

---

१. साहित्य दर्पण, परिच्छेद २, श्लोक ४

२. कामायनी, पृष्ठ ८

३. सिद्धान्त कौमुदी, तिङन्ते भ्वादिप्रकरण

इसमें 'व्याल' उपमान है तथा 'सिन्धु-लहरें' उपमेय हैं। व्याल उपमान के व्यवहार ने वाक्य के वाच्यार्थ में एक विशेषता लादी है कि फेन उगलती हुई वे सर्पों सी प्रतीत होती हैं अन्यथा वाच्यार्थ में इतना चमत्कार न होता।

कोष से, जैसे—

एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था जल-प्रवाह ![1]

कोष के अनुसार पुरुष शब्द के अनेक अर्थों में से ये दो अर्थ भी हैं—मनुष्य और व्यक्ति। मनु देव थे परन्तु उन्हें पुरुष कहा गया है अतः हम यहाँ इसका अर्थ मनुष्य न लेकर व्यक्ति ही लेंगे।

इसके अतिरिक्त पवमान (वायु), तिमिंगल (मछली) एवं कनक (पलास) आदि शब्दों का वाच्यार्थ कोष से ही ज्ञात होता है।

आप्तवाक्य से, जैसे—

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता।[2]

इसमें ईश्वर को वाणी और मन के अगोचर कहा गया है जो आप्त वाक्यों के आधार पर ही है और उन वाक्यों का आशय जान लेने पर ही उपर्युक्त पद्य का भाव सुस्पष्ट होता है। कठोपनिषद् में लिखा है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया……।[3]

अर्थात् यह आत्मा (ब्रह्म) न प्रवचन से बोध्य है और न बुद्धि से।

इस प्रकार आप्त वाक्य भी अनेक स्थलों पर वाच्यार्थ की स्पष्टता में सहायक होते हैं।

व्यवहार से, यथा—

कामायनी में हिमगिरि, जल, तपस्वी, देवदारु, सिन्धु एवं धरा आदि अनेक शब्द व्यवहार से ही अपना वाच्यार्थ व्यक्त करते हैं क्योंकि व्यवहार में ही प्रत्यक्ष से इनके संकेत ग्रहीत होते हैं।

वाक्य शेष से, जैसे—

---

१. कामायनी, पृष्ठ ३

२. वही, पृष्ठ २६

३. कठोपनिषद्, वल्ली २, मन्त्र २३

अन्धकार में मलिन मित्र की,
धुँधली आभा लीन हुई।[1]

मित्र के अनेक वाच्यार्थ हैं, यथा—साथी और सूर्य आदि। परन्तु यहाँ प्रसंग के कारण से 'सूर्य' अर्थ ही ग्राह्य है।

शब्द-विवृति से, यथा—

आह सर्ग के अग्रदूत! तुम
असफल हुए, विलीन हुए।[2]

यहाँ 'सर्ग के अग्रदूत' से तात्पर्य 'देव' से है, जो प्रसंग से जाना जाता है। इसी प्रकार—

दिवा रात्रि या—मित्र वरुण की
बाला का अक्षय शृंगार;[3]

इसमें 'मित्र की बाला' से तात्पर्य है 'उषा' और 'वरुण की बाला' से 'चन्द्रमा'। ये अर्थ व्याख्या के उपरान्त ही गृहीत होते हैं अतः विवृति के [illegible] सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

सान्निध्य से, यथा—

कांति, दीप्ति, शोभा थी नचती
अरुण किरण-सी चारों ओर,
सप्त सिंधु के तरल कणों में
द्रुम दल में, आनन्द विभोर।[4]

इसमें 'अरुण' के 'लाल, सूर्य, सिन्दूर' आदि अनेक वाच्यार्थ होते हुए भी किरण के सान्निध्य से केवल सूर्य ही अभिप्रेत है। इसी प्रकार चतुर्थ पंक्ति में 'दल' के भी 'समूह, सेना, पत्र' आदि अनेक अर्थों की विद्यमानता में द्रुम के सान्निध्य से केवल दो ही अर्थ ग्राह्य हो सकते हैं—समूह या पत्र। इनमें भी तृतीय पंक्ति में सिन्धु-कणों के उल्लेख से 'पत्र' अर्थ ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

इस प्रकार कामायनी में व्याकरण आदि अनेक उपायों से शक्ति ग्रहण कर वाच्यार्थ गृहीत हुए हैं। ऐसे अनेकशः उदाहरण दिये जा सकते हैं परन्तु यहाँ हमने अल्प संख्या में इसलिए दिये हैं कि लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की भाँति वाच्यार्थ में अत्यधिक चमत्कार नहीं होता तथा वह सुबोध्य भी होता है।

---

१. कामायनी, पृष्ठ १४
२. वही, पृष्ठ ७
३. वही, पृष्ठ ३६
४. वही, पृष्ठ ८

: २ :

कामायनी में लाक्षणिक प्रयोग

हम पहले लिख चुके है कि शब्द तीन प्रकार के हैं—वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक। इन सभी शब्दों में स्वीय अर्थ को प्रकट करने की एक शक्ति होती है और वह प्रकरणवश ही होती है। प्रयुक्त हुआ एक ही शब्द नाना प्रकरणों में वाचक भी हो सकता है, लाक्षणिक भी और व्यंजक भी। और वहाँ वह क्रमशः अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति से वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को प्रकट करता है।

सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मनुष्य की वाणी में इन तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग बाहुल्य से होने लगा होगा और साहित्य-रचना के साथ तो उसका आधिक्य और भी हुआ होगा। इन शब्दों में वाचक की अपेक्षा लाक्षणिक में और लाक्षणिक की अपेक्षा व्यंजक में अधिक चमत्कार होता है अतः सहृदय को वे परमप्रिय और मनोरम प्रतीत होते हैं। काव्य का सौन्दर्य इनसे अत्यधिक परिवर्धित हो जाता है अतः कवि-कर्म में इनका समावेश अनिवार्य है।

कामायनी छायावाद एवं रहस्यवाद की रचना है और इनमें प्रतीकात्मकता अधिक होती है अतः इसमें लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है और वह भी अत्यन्त भव्यता से। इनमें से लाक्षणिक शब्द जिस शक्ति से लक्ष्यार्थ को प्रकाशित करता है वह लक्षणा कहलाती है।

मम्मटाचार्य ने लक्षणा का लक्षण इस प्रकार किया है—

> मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
> अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया ॥[1]

अर्थात् जब वाचक शब्द अपने मुख्यार्थ (संकेतितार्थ) की अविवक्षा या अनुपपत्ति में स्वीय अर्थ से सम्बद्ध किसी इतर अर्थ का रूढ़िवश या किसी प्रयोजन से प्रकटीकरण करता है तब वह लाक्षणिक शब्द कहलाता है और शब्द की आरोपित क्रिया या वृत्ति को लक्षणा कहते हैं।

कविराज विश्वनाथ ने भी इसी भाव को इस प्रकार कहा है—

> मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थःप्रतीयते।
> रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ॥[2]

---

१. काव्य प्रकाश १।४

२. साहित्य दर्पण २।५

इसकी व्याख्या सरल शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है कि मुख्यार्थ का बाध होने पर रूढ़ि या प्रयोजन से जिस शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से ही सम्बन्धित कोई अन्य अर्थ लक्षित हो, वह लक्षणा शक्ति कहलाती है। यथा 'वह व्यक्ति कार्य में कुशल है' इस वाक्य में कुशल का मुख्यार्थ 'कुशाग्रों को काटने वाला है परन्तु वह अपेक्षित नहीं है अतः इस अर्थ के असंगत होने पर रूढ़िवश 'चतुर' अर्थ प्रतीत होता है। यह अर्थ मुख्यार्थ से सम्बन्धित भी है क्योंकि कुशाग्रों को लवन करने का व्यापार चतुर व्यक्ति ही कर सकता है। इसी प्रकार किसी मनुष्य को पशु कहने में पश्वाकृति विवक्षित नहीं होती वरन् तत्प्रकृति ही वांछनीय होती है क्योंकि वक्ता का अभिप्राय उसे पशु समान चेष्टाशील बतलाना ही है।

इस प्रकार के लाक्षणिक शब्दों के लक्ष्यार्थ ने इस काव्य में महती श्री-वृद्धि की है। अब हम कामायनी में प्रयुक्त लाक्षणिक शब्दों में से कुछ विशिष्ट प्रयोगों के लक्ष्यार्थ को दर्शाते हुए उसकी प्रेरक लक्षणा शक्ति के भेदों का सहेतुक उल्लेख करेंगे।तदनन्तर भाव-व्यंजना एवं अलंकार-व्यंजना पर प्रकाश डालेंगे।

चिन्ता

(१० पद्य) 'अरी विश्व वन की व्याली' इसमें चिन्ता को विश्व-वन की व्याली कहा गया है और वह भी दुःखदायी होने रूप विशेष प्रयोजन से सादृश्य के कारण अतः 'प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा' है।

(११) 'हे अभाव की चपल बालिके' यहाँ बालिका शब्द लाक्षणिक है, इससे तात्पर्य है उत्पन्न हुई। जन्य-जनक सम्बन्ध होने और स्वार्थ को छोड़ देने के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

'हरी भरी सी दौड़ धूप' यहाँ सुखोत्पादक दौड़ धूप के कारण चिन्ता को ही दौड़-धूप बना दिया गया है। इस प्रक्रिया में कर्तृ क्रिया सम्बन्ध है और शब्द ने अपना अर्थ भी नहीं छोड़ा है अतः 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा' है।

(२७) 'छायापथ में नव तुषार का' इसमें नव तुषार से तात्पर्य है 'तारागण'। सादृश्य सम्बन्ध के कारण और आरोप के विषय का नाम न होने से 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा।' है।

'छायापथ' में रूढ़ि लक्षणा है।

(३४) 'मधु से पूर्ण अनन्त वसंत' इसका तात्पर्य है अपार सुखमय समय। यहाँ भी सादृश्य सम्बन्ध के होने से और आरोप के विषय के अभाव में 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा' है।

१०, ११ पद्य (चिन्ता सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ५
२७ (वही)—वही, पृष्ठ ८
३४ (वही)—वही, पृष्ठ १०

(६०) **'बहती पगली बारम्बार'** यहाँ सादृश्य के कारण नाव को पगली कहा गया है, अतः 'प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा' है।

(६२) **'लहरें व्योम चूमती उठतीं'** यहाँ लहरों से प्राणि-क्रिया चूमने का सम्बन्ध बतलाया गया है अतः मुख्यार्थ में बाधा होने पर 'व्योम चूमती' का अर्थ 'बहुत ऊँची उठतीं' है। इस अर्थ मे यह मुहावरा रूढ़ होने के कारण 'रूढि लक्षणा' है।

'गरल जलद' में गरल शब्द लाक्षणिक है क्योंकि इसका अर्थ विष न होकर 'संहारकर' है। यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी-लक्षणा' है।

(६९) **'देव-सृष्टि का ध्वंस अचानक, श्वास लगा लेने फिर से'**, इसमें विरोधाभास होने से तात्पर्य यह है कि 'देव-सृष्टि का नाश होते होते बच गया'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध होने और स्वार्थ को छोड़ देने से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण-लक्षणा' है।

(७७ पद्य) **'पवन पी रहा था शब्दों को, निर्जनता की उखड़ी साँस'**, पीना और श्वास उखड़ना प्राणि-धर्म हैं अतः वाक्य-द्वय का तात्पर्य है 'पवन में शब्द विलीन हो रहे थे' तथा 'चेतन शब्द से निर्जनता शब्दित हो रही थी'। पूर्व वाक्य में पूर्य-पूरक सम्बन्ध है और द्वितीय में कार्यकारण अतः 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण-लक्षणा' है।

(७९) **'आलिंगन पाती थी दृष्टि'** इसमें 'आलिंगन पाने' से तात्पर्य है 'देखना'। यहाँ विषय-विषयी सम्बन्ध होने और स्वार्थ का त्याग करने के कारण 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण-लक्षणा' है।

(८०) **'प्रलय निशा का होता प्रात'** इसमें प्रात का अर्थ है समाप्तिरूप प्रातः अतः यहाँ विरोध सम्बन्ध होने से तथा स्वार्थ का पूर्णतः त्याग न होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

आशा

(१ पद्य) **'उषा सुनहले तीर बरसती'** यहाँ तीर शब्द किरणों के लिए प्रयुक्त हुआ है। सादृश्य सम्बन्ध होने एवं आरोप के विषय का अभाव होने के कारण इसमें 'प्रयोजनवती साध्यवसाना-गौणी लक्षणा' है।

(२) **'वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का'** इसमें मुख का लक्ष्यार्थ 'रूप' है।

६०, ६२ पद्य (चिन्ता सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १६
६९ (वही)—वही, पृष्ठ १७
७७ (वही)—वही, पृष्ठ १९
७९, ८० (वही)—वही, पृष्ठ २०
१, २ (आशा सर्ग)—वही, पृष्ठ २३

संयोग सम्बन्ध से आरोप होने और आरोप में विषय का तिरोभाव न होने तथा मुख्यार्थ को त्याग देने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षणलक्षणा' है।

'धान लगा हँसने फिर से' यहाँ 'हँसने' शब्द लाक्षणिक है, जिसका अर्थ है 'खिल उठा'। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(४ पद्य) जगीं वनस्पतियाँ अलसाई, मुख धोतीं शीतल जल से। यहाँ 'जगीं' और 'मुख धोतीं' शब्द लाक्षणिक हैं क्योंकि जगना और मुख धोना प्राणियों के धर्म हैं परन्तु यहाँ वनस्पतियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अतः इनका अर्थ है 'हिमाच्छादन से निकलीं' एवं 'स्वच्छ हुईं'। यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना' है। गौणी इसलिए कि सादृश्य सम्बन्ध है और साध्यवसाना इसलिए कि उपमान सामने है।

(५) नेत्र निमीलित करती मानो, प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने;
जलधि लहरियों की अँगड़ाई, बार बार जाती सोने।

इसमें 'नेत्र निमीलित करती प्रबुद्ध होने लगी', 'अँगड़ाई' और 'सोने जाती' लाक्षणिक शब्द हैं, जिनका क्रमशः अर्थ है 'प्रकृति की वस्तुएँ शनैः-शनैः प्रकाश में आईं और पुनः स्पष्ट हो गईं', 'सुदृढ़ता या चञ्चलता' और 'शान्त होने लगीं'। यहाँ भी उपर्युक्त आधार पर 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

(६) सिन्धु सेज पर धरा वधू अब, तनिक सङ्कुचित बैठी-सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में, मान किये-सी ऐंठी-सी।

यहाँ सिन्धु को सेज और धरा को वधू कह कर उसका सङ्कुचित होकर बैठना एवं मान करना और ऐंठना वर्णित है। धरा वधू हो नहीं सकती अतः मुख्यार्थ का बाध होने पर 'वधू के समान सिकुड़ी' इत्यादि अर्थ है। सादृश्य के कारण आरोप होने से 'प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा' है।

(७) 'जैसे कोलाहल सोया हो' इसमें 'सोया' लाक्षणिक शब्द है क्योंकि यह प्राणी-धर्म है। इसका लक्ष्यार्थ है 'शान्त'। यहाँ भी 'प्रयोजनवती गौणी लक्षण-लक्षणा' है।

(२१) 'खेल रहा है शीतल दाह' इसमें शीतल लाक्षणिक शब्द है क्योंकि दाह शीतल नहीं हो सकता अतः अर्थ है 'मधुर'। यहाँ विरुद्ध धर्म होने से और अपना अर्थ छोड़ देने से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

(५६ पद्य) हृदय-कुसुम की खिलीं अचानक मधु से वे भीगी पाँखें। इसमें

४, ५ पद्य (आशासर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २३
६, ७　(वही)—वही, पृष्ठ २४
२१　(वही)—वही, पृष्ठ २७
५६ पद्य　(वही)—वही, पृष्ठ ३५

'मधु से भीगी पाँखों' का अर्थ है 'मधुर भाव'। सम्बन्धी-सम्बन्ध होने से तथा स्वार्थ को छोड़ देने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

(५९) दिवा रात्रि या-मित्र वरुण की, बाला का अक्षय शृङ्गार; इसमें 'मित्रबाला' से तात्पर्य है 'उषा' और 'वरुणबाला' से 'चन्द्रमा'। जन्यजनक सम्बन्ध एवं 'जहत्स्वार्था होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

'मिलन लगा हँसने' इसमें 'हँसने' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है 'स्पष्ट दिखाई देने लगा'। यहाँ भी 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

(६१) आशा की उलझी अलकों से, उठी लहर मधुगंध अधीर। इसमें 'अलकों' और 'मधुगंध' लाक्षणिक पद हैं, जिनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है 'अस्पष्ट भावनाओं' और 'मधुर आनन्द'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से आरोप होने एवं स्वार्थ को छोड़ देने से 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणलक्षणा' है।

(६२) 'जो कटुता से देता घोट' इसमें 'कटुता' का लक्ष्यार्थ है पीड़ा। यहाँ भी 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणलक्षणा' है।

(६३) सुख-स्वप्नों का दल छाया में, पुलकित हो जगता-सोता।

इसमें 'छाया' और 'जगता-सोता' पद लाक्षणिक हैं, जिनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है 'हृदय' और 'उठता और नष्ट होता'। यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणलक्षणा' है।

(६५) 'अपनी निधि न व्यर्थ खोलो' इसमें 'निधि' का लक्ष्यार्थ है 'हृदय का रहस्य'। सादृश्य के कारण आरोप होने और जहत्स्वार्था होने के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणलक्षणा' है।

(६८ पद्य) 'आह शून्यते!' इसमें 'शून्यते' पद निस्तब्ध रात्रि के लिए प्रयुक्त हुआ है। अंगांगिभाव सम्बन्ध से आरोप होने किन्तु आरोप के विषय का उल्लेख होने से तथा स्वार्थ को न छोड़ने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा' है।

(७६) पगली हाँ सम्हाल ले कैसे, छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल।

इसमें मदमाती रात्रि के लिए पगली, आकाश के लिए अंचल और तारों के लिए मणिराजी का प्रयोग हुआ है। यहाँ सादृश्य के कारण आरोप होने किन्तु

५९,६१,६२ पद्य (आशा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ३६
६३,६५ (वही)—वही, पृष्ठ ३७
६८ (वही)—वही, पृष्ठ ३८
७६ (वही)—वही, पृष्ठ ४०

आरोप के विषय का उल्लेख न होने से तथा स्वार्थ को त्याग देने के कारण 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

श्रद्धा

(१ पद्य) कर रहे निर्जन का चुपचाप, प्रभा की धारा से अभिषेक ?

इसमें 'अभिषेक कर रहे' का लक्षार्थ है 'व्याप्त कर रहे' या 'सुशोभित कर रहे'। तात्कर्म्य सम्बन्ध से तथा स्वार्थ को त्याग देने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

(१६) और पड़ती हो उस पर शुभ्र, नवल मधु-राका मन की साध।

इसमें 'शुभ्र राका' से तात्पर्य है 'रात की चाँदनी' और 'साध' से प्रयोजन है 'साध के समान प्रिय'। यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(२०) 'सजल अभिलाषा' में 'सजल' लाक्षणिक पद है जिसका अर्थ है 'सरस'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध के कारण 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(४८) 'युगों की चट्टानों' में 'चट्टानों' का लक्ष्यार्थ है 'विषम परिस्थितियाँ'। यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण लक्षणा' है।

(५२ पद्य) 'सजल संसृति' का लक्ष्यार्थ है 'संसाररूपी समुद्र'। यहाँ आधाराधेय सम्बन्ध से सजल का अर्थ समुद्र लिया गया है। अजहत्स्वार्था होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

काम

(१ पद्य) मधुमय बसंत जीवन वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में।

इसमें 'वसंत' एवं 'अन्तरिक्ष' पदों का लक्ष्यार्थ है 'यौवन' एवं 'हृदय'। सादृश्य सम्बन्ध से आरोप होने तथा आरोप के विषय का उल्लेख न होने से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

इसी प्रकार 'रजनी के पिछले प्रहरों में' से तात्पर्य 'अबोध बालावस्था की चरमावस्थिति पर' भी है। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा ही है।

(२) 'कोयल', 'अलसाई', 'कलियों' एवं 'आँखें खोली थीं' पदों का क्रमशः लक्ष्यार्थ है 'मन', 'सुप्त', 'भावों' एवं 'जग पड़े थे'। यहाँ उपरिलिखित लक्षणा है।

---

१ पद्य (श्रद्धा सर्ग) कामायनी, पृष्ठ ४५
१६ (वही) —वही, पृष्ठ ४८
२० (वही) —वही, पृष्ठ ४९
४८ (वही) —वही, पृष्ठ ५६
५२ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ ५९
१, २ (काम सर्ग) —वही, पृष्ठ ६३

(३) 'कोरक' और 'शिथिल सुरभि' का क्रमशः लक्ष्यार्थ है 'किशोरी' एवं 'शिथिल सुगन्धित निश्वासें' यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(४) 'जब लिखते थे तुम सरस हँसी' इसमें 'लिखते थे' और 'हँसी' लाक्षणिक पद हैं, जिनका क्रमशः अर्थ है 'विकसित करते थे' तथा 'उल्लास'। इसी प्रकार 'फूलों' से तात्पर्य है 'युवतिएँ' एवं 'झरनों' से 'मधुर ध्वनियाँ'।

यहाँ भी 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

(६) 'शिशु चित्रकार' से अभिप्राय 'अबोध प्रेमी-युगल' और 'जीवन की आँखों' से 'यौवन' भी है। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(७ पद्य) 'लतिका घूँघट से चितवन की' में 'लतिका' का लक्ष्यार्थ है 'युवती'। सादृश्य के कारण आरोप होने से यहाँ भी वही लक्षणा है।

(१०) 'ओ नील आवरण जगती के' इस में 'नील आवरण' तादर्थ्य सम्बन्ध के कारण आकाश के लिए प्रयुक्त हुआ है। आकाश का उल्लेख न होने तथा अजहत्स्वार्था होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा' है।

(११) 'चलचक्र वरुण का ज्योति भरा' इस सम्पूर्ण पद्यांश का लक्ष्यार्थ है 'चन्द्रमा'। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(१२) 'नवनील कुञ्ज हैं झीम रहे' इसमें 'नील कुञ्ज' से तात्पर्य 'आकाश' भी है। यहाँ सादृश्य के कारण आरोप होने तथा आरोप का उल्लेख न होने से 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

'कुसुमों की कथा न बंद हुई' में 'कुसुमों' का लक्ष्यार्थ है 'तारों'। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(१३) 'इस इंदीवर से गंध भरी' में 'इंदीवर' का लक्ष्यार्थ 'आकाश' है। यहाँ भी उपरिलिखित लक्षणा है।

(१५) बनता है प्राणों की छाया' में 'छाया' पद लाक्षणिक है। इसका तात्पर्य है 'शान्तिप्रदायिनी वस्तु'। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(१६) 'आकाशरंध्र' का लक्ष्यार्थ 'तारे' और 'आलोक' का 'तारे एवं चन्द्रमा' है।

३, ४ पद्य (काम सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ६३
६ (वही)—वही, पृष्ठ ६४
७ (वही)—वही, पृष्ठ ६४
१०, ११, १२, १३ (वही)—वही, पृष्ठ ६५
१५, १६ (वही)—वही, पृष्ठ ६६।

सादृश्य सम्बन्ध होने और आरोप का संकेततः 'एक, दूसरा' शब्दों से उल्लेख होने से यहाँ 'प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा' है।

(२५) 'कुन्द मन्दिर सी हँसी' इसमें 'मन्दिर' शब्द पुष्प के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः लाक्षणिक है। प्रकरणवश तादर्थ्य सम्बन्ध के कारण तथा आरोप के विषय का उल्लेख न होने और जहत्स्वार्था होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

(२७ पद्य) 'इस निशामुख की मनोहर सुधामय मुसक्यान' इसमें निशामुख का लक्ष्यार्थ है 'चन्द्रमा'। सादृश्य के कारण आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने से यहाँ 'प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा' है।

(२९) 'सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग' इसमें 'हँसने लगी' और 'खिला' पद लाक्षणिक है। इनका लक्ष्यार्थ है 'विकास को प्राप्त होना'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी सारोपा लक्षणलक्षणा' है।

(४०) विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील,
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मंगल खील;
राशि-राशि नखत कुसुम की अर्चना अश्रांत,
बिखरती है, ताम्ररस सुन्दर चरण के प्रांत।

इसमें आकाश के लिए 'आवरण', तारों के लिए 'खील', नखत के लिए 'कुसुम' और चन्द्र के लिए 'चरण' का प्रयोग हुआ है। यहाँ सादृश्य के कारण ऐसा हुआ है अतः कुसुम के अतिरिक्त तीनों में 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षण लक्षणा' है। 'कुसुम' में 'प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा' है।

(४८) 'चन्द्र की विश्राम राका बालिका सी कांत' इसमें 'चन्द्र की विश्राम राका बालिका' का तात्पर्य है 'चन्द्रिका'। जन्य-जनक सम्बन्ध के कारण आरोप होने से तथा आरोप के विषय का उल्लेख न होने से तथा जहत्स्वार्था होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

लज्जा

(३ पद्य) 'आँखों में पानी भरे हुए' इसमें 'पानी' का लक्ष्यार्थ है 'सरसता'।

---

२५ पद्य (वासना सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ८७
२७ (वही)—वही, पृष्ठ ८७
२९ (वही)—वही, पृष्ठ ८८
४० (वही)—वही, पृष्ठ ९१
४८ (वही)—वही, पृष्ठ ९३
३ (लज्जा सर्ग)—वही, पृष्ठ ९७

-तादर्थ्य सम्बन्ध से आरोप होने के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान-लक्षणा' है।

(६) 'झुक जाती है मन की डाली' में 'डाली' का लक्ष्यार्थ है 'उभरती भाव-धारा'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

(१२ पद्य) 'किरणों का रज्जु' से तात्पर्य है 'साहस की किरण डोर'। धार्य-धारक भाव सम्बन्ध होने तथा स्वार्थ का त्याग न करने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान-लक्षणा है।

(१५) 'स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे' इसमें 'सुमन' भावों के लिए प्रयुक्त हुआ है। सादृश्य से आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

(१६) संध्या की लाली में हँसती, उसका ही आश्रय लेती सी;

इस सम्पूर्ण पद्यांश का तात्पर्य है 'संध्या की लालिमा के समान रूप वाली'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(१९) हरियाली' का लक्ष्यार्थ है 'प्रसन्नता'। यहाँ भी सादृश्य से आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने से 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना-लक्षणा' है।

(२२) 'नयनों की नीलम की घाटी' में 'नीलम की घाटी' का अर्थ है 'नीली पुतलियाँ'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध से 'शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

(४२) मैं जभी तोलने का करती, उपचार स्वयं तुल जाती हूँ;

इसमें 'तोलने' और 'तुल जाती' का लक्ष्यार्थ है 'वश में करने' और 'वश में हो जाती'। यहाँ भी 'शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

कर्म

(६ पद्य) 'बने ताड़ ये तिल के' का लक्ष्यार्थ है 'छोटी बात बड़ी बन गई'। यहाँ 'रूढि लक्षणा' है।

६ पद्य (लज्जा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ९८
१२, १५ (वही)—वही, पृष्ठ ९९
१९ (वही)—वही, पृष्ठ १००
२२ (वही)—वही, पृष्ठ १०१
४२ (वही)—वही, पृष्ठ १०५
६ (कर्म सर्ग)—वही, पृष्ठ ११०

(१२ पद्य) किन्तु स्पर्श के तर्क करों के, बनता 'छुई मुई है'।

यहाँ सत्य के लिए तर्क से 'छुई मुई बनना' कहा गया है, जिसका अर्थ रूढ़ि से 'संकुचित होना' है अतः 'रूढ़ि लक्षणा' है।

(१५) कब तक मैं देखूँ जीवित पशु, घूँट लहू का पीऊँ ?

इसमें 'घूँट लहू का पीऊँ' से तात्पर्य है 'मन मार के रहूँ'। यह अर्थ रूढ़ होने से यहाँ भी 'रूढ़ि लक्षणा' है।

(१६) बहुत दिनों पर एक बार तो सुख की बीन बजाऊँ।

यहाँ भी 'सुख की बीन बजाऊँ' का अभिप्राय रूढ़िवश 'आनन्द मनाऊँ' है अतः उपर्युक्त लक्षणा ही है।

(३३ पद्य) मिलकर वातावरण बनाया, कोई कुत्सित प्राणी।

इसमें 'कुत्सित प्राणी' का लक्ष्यार्थ है 'कुत्सित प्राणी के समान घृणित'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से आरोप होने और आरोप्य तथा आरोप के विषय का उल्लेख होने एवं अजहत्स्वार्था होने से 'प्रयोजनवती गौणी सारोपा उपादानलक्षणा' है।

(४२) 'तामस को छलती थी' में 'छलती थी' का लक्ष्यार्थ है 'कम कर रही थी'। विरोधी-भाव सम्बन्ध होने तथा स्वार्थ को न त्यागने से यहाँ 'शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(४६) अंचल लटकाती निशीथिनी अपना ज्योत्स्ना-शाली,

इसमें 'अंचल का लक्ष्यार्थ है 'चाँदनी'। यहाँ सादृश्य के कारण आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख होने से 'प्रयोजनवती गौणी सारोपा लक्षणा' है।

(४७) 'हँसती' का लक्ष्यार्थ 'विकास' को प्राप्त होती और 'हँसी' का 'उजाला' है। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(५२) मधुवन का लक्ष्यार्थ है 'सुख'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध से आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने तथा जहत्स्वार्था होने से 'प्रयोजवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

(५३) 'व्यथित बसेरा' में 'व्यथित' से तात्पर्य है 'व्यथापूर्ण'। यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

१२, १५ पद्य (कर्म सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १११
१६ (वही) —वही, पृष्ठ ११२
३३ (वही) —वही, पृष्ठ ११६
४२ (वही) —वही, पृष्ठ ११८
४६, ४७ (वही) —वही, पृष्ठ ११९
५२, ५३ (वही) —वही, पृष्ठ १२०

(११९) 'एकान्त' का लक्ष्यार्थ 'व्यक्तिगत' है। यहाँ 'शुद्धालक्षणा' है।

(१२१) 'हृदयों की शिशुता को' में 'शिशुता' का लक्ष्यार्थ है 'भोलापन'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

ईर्ष्या

(२ पद्य) 'लग गया रक्त था उस मुख में' इसका तात्पर्य है 'आनन्द आने लगा था, अत्यधिक रुचि हो गई थी'। इसमें 'रूढ़िलक्षणा' है।

(६) 'रोये' का लक्ष्यार्थ 'निष्फल रहेगी'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणलक्षणा' है।

इड़ा

(२ पद्य) 'उपेक्षा भरे' से तात्पर्य है 'उदासीन से'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

'समाधि में रहे सुखी' का अभिप्राय है 'मौन से'। यहाँ भी सादृश्य के कारण वही लक्षणा है।

'स्तिमितनयन गतशोकक्रोध' से भी तात्पर्य है इनके समान। यहाँ भी वही लक्षणा है।

(३) 'अपनी ज्वाला से कर प्रकाश' में 'प्रकाश कर' का लक्ष्यार्थ है 'जला कर'। यहाँ प्रसंगवश अर्थान्तर निकलने से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

'विलख रही मेरी पुकार' में 'विलख रही' का तात्पर्य 'उपेक्षित है या उसे कोई सुनने वाला नहीं'। यहाँ 'रूढ़ि लक्षणा' है।

'फूल खिला' में 'फूल' का लक्ष्यार्थ 'फूल जैसा कोमल हृदय मनुष्य' है। यहाँ सादृश्य के कारण आरोप होने परन्तु आरोप के विषय का उल्लेख न होने से 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

'कुसुम-हास' का लक्ष्यार्थ है 'इच्छाओं की पूर्ति'। यहाँ कल्पना-लोक के कारण आधाराधेय सम्बन्ध होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

(४) 'उन्मुक्त शिखर हँसते' में 'हँसते' से तात्पर्य है 'हँसते से प्रतीत होते हैं'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

---

११९ (कर्म सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १३४
१२१ (वही) —वही, पृष्ठ १३५
२ पद्य (ईर्ष्या सर्ग)—वही, पृष्ठ १३९
६ (वही) —वही, पृष्ठ १४०
२ पद्य (इड़ा सर्ग)—वही, पृष्ठ १५७
३, ४ (वही) —वही, पृष्ठ १५८

(६) 'हँसती तुझ में सुन्दर छलना' में 'हँसती' का अभिप्राय है 'अपना स्पष्ट रूप दिखाती' है। यहाँ तात्पर्य सम्बन्ध के कारण 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(७) 'कुरुचि दब रही' में 'कुरुचि' का लक्ष्यार्थ है 'कुरुचिपूर्ण हृदय'। संयोग सम्बन्ध से आधार होने तथा अजहत्स्वार्था होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(१७) 'पैरों में झूले हार जीत' में 'पैरों से झूले' का लक्ष्यार्थ है। 'बारी बारी से आवें'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(१८ पद्य) व्यापकता' का लक्ष्यार्थ है 'कार्य करने की अपार शक्ति'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(२१) 'युग दीन' में 'दीन' का लक्ष्यार्थ है 'मन्द'। यहाँ भी सादृश्य के कारण उपर्युक्त लक्षणा है।

(२२) 'विषाद' का लक्ष्यार्थ है 'विषाद के समान'। यहाँ भी सादृश्य के कारण उपरिलिखित लक्षणा ही है।

(२५) आलोकमयी स्मिति चेतनता आई यह हेमवती छाया।

इसमें 'स्मिति', 'चेतनता' और 'हेमवती छाया' का लक्ष्यार्थ क्रमशः 'स्मिति वाली', 'चैतन्ययुक्त' और 'सुनहली कान्तिवाली' है। संयोग सम्बन्ध या धार्यधारक सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

'उजली माया' से तात्पर्य है 'आशा-पक्ष'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(२६) 'आये दिन मेरा' का लक्ष्यार्थ है कि 'फिर मेरे अच्छे दिन आवें'। यहाँ 'रूढ़ि लक्षणा' है।

'भव के भविष्य का द्वार खोल' में 'द्वार खोल' का लक्ष्यार्थ है 'रहस्योद्घाटन करो'। तादर्थ्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(३०) 'हँस पड़ा गगन' में 'हँस पड़ा' से तात्पर्य है 'उषा-प्रकाश से दीप्तिमान हो गया'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

---

६ (इड़ा सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ १५९
७ (वही) —वही, पृष्ठ १६०
१७ (वही) —वही, पृष्ठ १६५
१८ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १६५
२१, २२ (वही) —वही, पृष्ठ १६७
२५, २६ (वही) —वही, पृष्ठ १६९

स्वप्न

(१, २, ३, ४) प्रथम पद्य में 'अरुण जलज' और 'तामरस' पद लाक्षणिक हैं। इनका अर्थ है 'इनके समान'। अतः यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा' है।

इसी प्रकार दूसरे पद्य में 'कुसुम', 'चित्र', 'शशि' और 'संध्या'। तीसरे पद्य में 'तामरस', 'इन्दीवर', 'सरसी', 'जलधर' और 'क्षीण स्रोत' तथा चौथे पद्य में 'वेदना', 'उपेक्षा', 'छाया' और 'विरह नदी' पदों का अर्थ भी 'इनके समान' हैं। यहाँ भी सादृश्य सम्बन्ध से आरोप हुआ है परन्तु आरोप के विषय कामायनी का उल्लेख होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षणा' है।

(११ पद्य) **विरल डालियों के निकुञ्ज सब ले दुख के निश्वास रहे।**

इसमें 'दुख के निश्वास ले रहे' का लक्ष्यार्थ है 'वायु साँय-साँय करता हुआ चल रहा है'। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(१६) 'मानभरी मधु ऋतु रातें' मे 'मानभरी' तथा आगे 'रूठ चली जातीं', 'रक्तिम मुख' और 'न सह जागरण की घातें', 'मधुर आलाप कथा सा कहता' और 'मुसक्याते' पद या पद-समूह लाक्षणिक हैं। रात, दिन एवं तारों में ये प्राणिधर्म सादृश्य के कारण अनुमानित हुए है अतः 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(१८) 'वन बालाओं' का लक्ष्यार्थ 'लताओं' और 'वेणु' का 'पक्षी' है। यहाँ क्रमशः जन्य-जनक एवं आधाराधेय सम्बन्ध से आरोप होने तथा आरोप के विषय का उल्लेख न होने से 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा' है।

'छिप गया' का लक्ष्यार्थ है 'बीत गया'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(२०) 'अरुण जलज' का लक्ष्यार्थ 'आँखें' और 'तुषार के बिंदु' का 'आँसू' है। सादृश्य के कारण यहाँ भी 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा' है।

(२१) 'जले दीप नभ के' में 'दीप' का लक्ष्यार्थ है 'तारे'। यहाँ आधाराधेय सम्बन्ध से आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने से तथा स्वार्थ को छोड़ देने से 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा' है।

१, २, ३, ४ पद्य (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १७५
११ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १७७
१७, १८ (वही) —वही, पृष्ठ १७८
२०, २१ (वही) —वही, पृष्ठ १७९

(२५) 'जल उठते हैं' का लक्ष्यार्थ है 'स्मृति में आकर पीड़ा दे जाते हैं'। यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(३६) 'मुख संध्या की लालिमा पिये' में 'लालिमा पिये' लक्ष्यार्थ 'लालिमा के समान लाल'। यहाँ सादृश्य के कारण 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

संघर्ष

(३६ पद्य) 'चिति केन्द्रों' का लक्ष्यार्थ है 'प्राणी'। धार्य-धारक सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(१००) 'प्रकृति और उसके पुतलों' में 'पुतलों' का लक्ष्यार्थ है 'मनुष्य'। यहाँ भी 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

निर्वेद

(२ पद्य) 'पंख भर रहे सर्राटे' का लक्ष्यार्थ है 'मस्तिष्क में वेग से आ-जा रहे थे'। यहाँ 'रूढ़ि लक्षणा' है।

(१४) 'डाल रही हूं मैं फेरा' का तात्पर्य है 'इधर उधर घूम रही हूँ'। यहाँ भी 'रूढ़ि लक्षणा' है।

(२८) 'ले चल इस छाया के बाहर' में 'इस छाया' से अभिप्राय है 'इस स्थान की सीमा'। संयोग सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(३५) 'भर दी हरियाली कितनी' मे 'हरियाली' का लक्ष्यार्थ है 'प्रसन्नता'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना-लक्षणा' है।

(४३) 'किरनों ने अब तक न छुआ' में 'किरनों' का लक्ष्यार्थ 'ज्ञान की किरनें' है। संयोग सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा-लक्षणा' है।

---

२५ पद्य (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १८०
३६ (वही) —वही, पृष्ठ १८३
३६ (संघर्ष सर्ग)—वही, पृष्ठ १९२
१०० (वही) —वही, पृष्ठ २००
२ (निर्वेद सर्ग)—वही, पृष्ठ २०५
१४ (वही) —वही, पृष्ठ २११
२८ (वही) —वही, पृष्ठ २१९
३५ (वही) —वही, पृष्ठ २२३
४३ (वही) —वही, पृष्ठ २२७

दर्शन

(६ पद्य) 'जग जगता आँखें किये लाल' इसमें 'जग' से तात्पर्य 'जग के लोग' है। आधाराधेय सम्बन्ध से आरोप होने और अजहत्स्वार्था होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा' है।

(७ पद्य) 'शीतल अगाध है' में 'शीतल' का लक्ष्यार्थ है 'शीतलता'। संयोग सम्बन्ध होने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

मुस्क्याते इसमें भाव सकल,
हँसता है इसमें कोलाहल,

इसमें 'मुस्क्याते' और 'हँसता' पद लाक्षणिक हैं, जिनका क्रमशः अर्थ है "सुख देते हैं' और 'आनन्द देता है'। कार्यकारण सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण लक्षणा' है।

(१०) 'अनुराग भरी हूँ मधुर घोल' इसमें 'मधुर' का अभिप्राय है "मधुरता'। यहाँ भी 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(१२) 'अधिकार न सीमा में रहते' इसमें 'अधिकार' का लक्ष्यार्थ है "अधिकारी जन'। यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

(१७) 'सिर चढ़ी रहीं' का लक्ष्यार्थ है 'बुद्धि को प्रेरित करती रहीं'। आधाराधेय सम्बन्ध से यहाँ भी 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है। यदि यह अर्थ करें कि 'प्रभावित करती रहीं' तो 'रूढ़ि लक्षणा' होगी।

(२४) 'पकड़ा कुमार का मृदुल फूल' में 'फूल' का लक्ष्यार्थ है 'फूल के समान हाथ'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से आरोप होने और आरोप के विषय का उल्लेख न होने से 'प्रयोजनवती गौणी-साध्यवसाना लक्षणा' है।

(२६) 'कुछ शून्य बिन्दु उर के ऊपर' में 'बिन्दु' का तात्पर्य 'तारे' हैं। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ भी उपर्युक्त लक्षणा है।

'उर' से तात्पर्य 'तल' है। यहाँ भी वही लक्षणा है।

---

६ पद्य (दर्शन सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २३५
७ (वही) —वही, पृष्ठ २३६
१० (वही) —वही, पृष्ठ २३७
१२ (वही) —वही, पृष्ठ २३८
१७ (वही) —वही, पृष्ठ २४१
२४ (वही) —वही, पृष्ठ २४४
२६ (वही) —वही, पृष्ठ २४५

(२७) 'बहती माया सरिता ऊपर' इसमें 'माया सरिता' का लक्ष्यार्थ है 'आकाश गंगा'। यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती शुद्धा-उपादान लक्षणा' है।

(२८) 'था पवन हिंडोले रहा झूम' का तात्पर्य है 'पवन इधर से उधर वेग से बह रहा था'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(३२) 'छूट गया हाथ से आह तीर' का अभिप्राय है 'जो होना था सो हो गया'। यहाँ 'रूढ़ि लक्षणा' है।

(३३) 'क्यों लगे डंक' में 'डंक' का लक्ष्यार्थ है 'पीड़ा'। सादृश्य सम्बन्ध से आरोप होने परन्तु आरोप के विषय का उल्लेख न होने से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी-साध्यवसाना लक्षणा' है।

(३६ पद्य) 'शान्ति-प्रात' में 'प्रात' का लक्ष्यार्थ 'आरम्भ' है। तादर्थ्य सम्बन्ध से आरोप होने और स्वार्थ को त्याग देने से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण लक्षणा' है।

(३८) 'भूमिका' का लक्ष्यार्थ है 'पृष्ठभूमि'। यहाँ सादृश्य सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

'शून्य-सार' का लक्ष्यार्थ 'अन्धकार' है। यहाँ आधाराधेय सम्बन्ध से तथा आरोप के विषय का उल्लेख न होने से एवं स्वार्थ को त्याग देने से 'प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा' है।

(४२) 'युग त्याग ग्रहण कर रहे तोल' में 'तोल' का लक्ष्यार्थ है 'एक नियमित समय'। यहाँ साध्यसाधक सम्बन्ध से उपर्युक्त लक्षणा है।

'परिवर्त्तन का पट रहा खोल' का अर्थ है 'अनेक परिवर्त्तन हो रहे थे'। यहाँ भी 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

रहस्य

(२८ पद्य) 'अँगड़ाई है लेती' का लक्ष्यार्थ है 'स्वरों में तरंगायित होती है'। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

२७,२८ पद्य (दर्शन सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २४६
३२ (वही) —वही, पृष्ठ २४८
३३ (वही) —वही, पृष्ठ २४९
३६ (वही) —वही, पृष्ठ २५०
३८ (वही) —वही, पृष्ठ २५१
४२ (वही) —वही, पृष्ठ २५३
२८ (रहस्य सर्ग) —वही, पृष्ठ २६३

(३३) 'संसृति छाया' का लक्ष्यार्थ हैं 'छायामय शरीर'। यहाँ भी सादृश्य के कारण उपर्युक्त लक्षणा हैं।

(३४) 'चूमतीं' का अर्थ है 'स्पर्श करती हैं'। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ भी वही लक्षणा है।

(३६) 'मचल रहे हैं सुन्दर झूले' में 'झूले' का लक्ष्यार्थ है 'लहरें'। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ भी उपरिलिखित लक्षणा ही है।

(४४) 'हिंसा गर्वोन्नत हारों मे' इसमें 'हारों' का तात्पर्य है 'भाव-लहरों'। यहाँ संयोग सम्बन्ध से 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

'अणु' का लक्ष्यार्थ 'तुच्छ प्राणी' है। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ 'गौणी लक्षणा' है।

(४८ पद्य) 'अंधकार में दौड़ लग रही' का तात्पर्य है 'अज्ञान-पूर्वक कर्म-निरत है'। यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

(५४) 'प्यासे घायल हो जल जाते' में 'प्यासे' का लक्ष्यार्थ 'अभावग्रस्त', 'घायल हो' का 'दुखी होकर' और 'जल जाते' का 'नष्ट हो जाते हैं' है। सादृश्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

(६४) 'ढीली साँसें करता' का अर्थ है 'सन्तोष प्राप्त करता है'। तादर्थ्य सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

आनन्द

(७० पद्य)

उन्मद माधव मलयानिल
दौड़े सब गिरते पड़ते;
परिमल से चली नहाकर
काकली, सुमन थे झड़ते।

इसमें 'गिरते पड़ते दौड़े' का लक्ष्यार्थ है 'शीघ्रता से आ गये'। और 'नहाकर' का अर्थ है 'पगी हुई'। सादृश्य के कारण यहाँ 'प्रयोजनवती गौणी लक्षणा' है।

३३,३४,३६ (रहस्य सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २६४
४४ (वही) —वही, पृष्ठ २६६
४८ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ २६७
५४ (वही) —वही, पृष्ठ २६८
६४ (वही) —वही, पृष्ठ २७१
७० पद्य (आनंद सर्ग)—वही, पृष्ठ २९२

(८०) 'सुन्दर साकार बना था' में 'सुन्दर' का लक्ष्यार्थ 'सुन्दरता' है। संयोग सम्बन्ध से यहाँ 'प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा' है।

इस प्रकार इस काव्य में अनेक लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं, जिन्होंने अर्थ-सौन्दर्य को अत्यधिक बढ़ाया है। अब हम व्यन्जना के चमत्कार पर प्रकाश डालते हैं। प्रथम व्यन्जना का लक्षण लिखेंगे, पुनः उसके द्वारा व्यक्त मनोरम भावों का प्रकटीकरण करेंगे।

०

८० पद्य (आनन्द सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २६४

: ३ :

कामायनी में भाव-व्यञ्जना

हम लिख चुके हैं कि छायावाद एवं रहस्यवाद की रचना होने के कारण इस काव्य में व्यञ्जना ने भी भाव-सौन्दर्य में बड़ा सहयोग दिया है। वह शब्द जो वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ व्यक्त करता है व्यञ्जक होता है और वह अर्थ व्यंग्यार्थ कहलाता है तथा जिस शक्ति से वह ध्वनित होता है उसे व्यञ्जना कहते हैं। इस व्यंजना के व्यापार को व्यंजन, ध्वनन, द्योतन, अञ्जन प्रकाशन, प्रत्यायन, अवगमन, बोधन, सूचन आदि नामों से पुकारते हैं।[1]

व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है अतः उसे ध्वनि भी कहते हैं। मम्मट आचार्य ने ध्वनि-प्रधान काव्य को ध्वनि-काव्य कहा भी है।[2]

ध्वनि सिद्धान्त का सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्य आनन्द वर्धन ने भी यही लिखा है कि जहाँ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करते हैं, उस वाक्य विशेष को विद्वान् ध्वनि-काव्य कहते हैं—

> यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
> व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥[3]

अभिनव गुप्ताचार्य ध्वनि की विशेष व्याख्या करते हुए शब्द, अर्थ तथा शब्दार्थ के व्यापार सभी को ध्वनि कहते हैं।

१. "तच्च व्यञ्जनध्वननद्योतनादि शब्दवाच्यमवश्यमेषितव्यम्"
—काव्य प्रकाश २।१८

"आदि शब्देन अञ्जनप्रकाशनप्रत्यायनावगमनबोधनसूचनादि-
परिग्रहः" — भट्टवामनाचार्यकृत टीका

२. "इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः" — वही १।४

३. ध्वन्यालोक १।१३

वैयाकरण एवं नैयायिक शब्द को ही ध्वनि कहते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने इस विषय में प्रमाण देते हुए लिखा है, 'तस्माद् ध्वनिःशब्दः'।[1] तथा श्री विश्वनाथ पंचानन ने कारिकावली में 'शब्दो ध्वनिश्च'[2] कहकर इसी भाव की पुष्टि की है। किन्तु शब्द के ध्वनन को वे लोग स्फोट कहते हैं। वास्तव में यही वीचितरंग न्याय से शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके अर्थ की अभिव्यक्ति का मूल कारण है। अतः उनके मतानुसार व्यंग्यार्थ स्फोट ही है।

इस प्रकार काव्य में हम जिसे व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं, वह ध्वनि तथा स्फोट ही है क्योंकि शब्द में वह सकेतितार्थ तथा लक्ष्यार्थ की भाँति शब्दगम्य नहीं है वरन् उसमें से यह ध्वनित होता है, अथवा स्फुटित होता है। यथा किसी विशाल भवन या कूप में शब्द करने से प्रतिध्वनि निकलती है या किसी पदार्थ में विस्फोट होने से स्फुटन होता है, उसी प्रकार शब्द में से भी एक विचित्र अर्थ प्रतिध्वनित या स्फुटित होता है और वह व्यंग्यार्थ कहलाता है।

संस्कृत वाङ्मय में ध्वनि शब्द का प्रयोग प्रमुखतः पांच अर्थों में हुआ है। डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—

"१. 'ध्वनति यः सः व्यंजनः शब्दः ध्वनिः—जो ध्वनित करे या कराये वह व्यंजन शब्द ध्वनि है।

२. 'ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकोऽर्थोऽध्वनिः'—जो ध्वनि करे या ध्वनित कराये वह व्यंजक अर्थ ध्वनि है।

३. 'ध्वन्यते इति ध्वनिः'—जो ध्वनित किया जाय वह ध्वनि है। इसमें रस, अलंकार और वस्तु-व्यंग्य अर्थ के ये तीनों रूप आ जाते हैं।

४. 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः'—जिसके द्वारा ध्वनित किया जाय वह ध्वनि है। इससे शब्द अर्थ के व्यापार-व्यंजना आदि शक्तियों का बोध होता है।

५. 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनि' :—जिसमें वस्तु, अलंकार और रसादि ध्वनित हों उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।

इस प्रकार ध्वनि का प्रयोग पाँच भिन्न भिन्न परन्तु परस्पर सम्बद्ध अर्थों में होता है—१. व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ, ३. व्यङ्ग्य अर्थ, ४. व्यञ्जना (व्यन्जना-व्यापार) और व्यङ्ग्य प्रधान काव्य। संक्षेप में ध्वनि का अर्थ है व्यंग्य, परन्तु पारिभाषिक रूप में यह व्यंग्य वाच्यातिशायी होना चाहिए।"[3]

---

१. महाभाष्यम्, अ० १, पा० १, आन्हिक १

२. कारिकावली, श्लोक १६४

३. हिन्दी ध्वन्यालोक, डॉ० नगेन्द्र लिखित भूमिका, पृष्ठ २४

इन अर्थों को ध्यानपूर्वक देखने से मुख्यतः ये तीन बातें फलित होती हैं कि ध्वनि से तात्पर्य शब्द भी है, अर्थ भी और काव्य भी। व्यंजक या स्फोटक शब्द ध्वनि इसलिए कहलाता है कि उस से एक विचित्र अर्थ ध्वनित होता है तथा काव्य भी ध्वनि काव्य इसीलिए कहलाता है और वह विचित्र अर्थ ही व्यंग्यार्थ है अतः काव्य में ध्वनि का व्यंग्यार्थ अधिक अपेक्षित होता है। कोषों में भी ध्वनि को व्यङ्ग्यार्थ या गूढ़ाशय कहा गया है।[1]

यह व्यंग्यार्थ जिस शक्ति से निकलता है उसे ही व्यंजना कहते हैं। साहित्य दर्पणकार ने व्यञ्जना का लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः ।।
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च[2] ।।

अर्थात् अपना-अपना कार्य बोधित करके अभिधा आदिक वृत्तियों के शान्त हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोध हो, वह शब्द तथा अर्थादिक में रहने वाली वृत्ति (शक्ति) व्यंजना कहलाती है।

यह व्यंजना दो प्रकार की होती है—शाब्दी और आर्थी। इनमें से शाब्दी भी दो प्रकार की होती है—अभिधामूला और लक्षणामूला। तात्पर्य यह है कि जहाँ वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति में योग देता है वहाँ अभिधामूला व्यंजना होती है और जहाँ लक्ष्यार्थ व्यंग्यार्थ का कारण होता है वहाँ लक्षणामूला व्यंजना होती है।

इस अनेकविध व्यंजना ने कामायनी में शत-शत मनोरम भावों की अभिव्यक्ति की है तथा अलकारों का उद्बोधन किया है। यहाँ पर अब हम इस काव्य में यावन्मात्र व्यङ्ग्यार्थ है, उनके प्रकाशन का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं। विस्तार के भय से हम व्यंजना या ध्वनि के भेदों पर प्रकाश न डालेंगे।

चिन्ता

(१ पद्य) 'एक पुरुष' में मनु को एक पुरुष कहा गया है जबकि वे एक देव थे। इससे व्यंजित किया गया है कि वे भावी मानव के ऊर्जस्वी आदि पुरुष थे।

'भीगे नयनों से' में दो भाव व्यक्त हो रहे हैं—

(१) उछलती सिन्धु-लहरियों से उच्चलित शीकरों से आर्द्र, तथा
(२) देव-ध्वंस से उमगे अश्रुओं से सिक्त नयन। यह व्यंग्यार्थ है।

---

१. बृहत् हिन्दी कोश तथा भाषा शब्द कोश
२. साहित्य दर्पण, २।१२-१३

(२) 'एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन ।'

इसमें 'प्रधानता' से व्यंजित होता है कि पंच तत्वों में यद्यपि हिमाच्छादित गिरिराज रूप में पृथ्वी, झंझा रूप में पवन तथा शंपा और उल्का रूप में अग्नि ये तीन तत्व आकाश में विद्यमान थे तथापि जल प्लावन ने समस्त विश्व को आप्लावित कर सुर-नर-सृष्टि का संहार कर दिया था अतः सर्वत्र महामहिम जल का ही बाहुल्य था।

यहाँ प्रसाद पर जैन-दर्शन का प्रभाव भी प्रतीत होता है क्योंकि केवल जैन-दर्शन में ही आकाश के अतिरिक्त शेष चार तत्वों को सचेतन माना है। इसीलिये प्रसाद जी कहते हैं कि ऊपर हिम रूप में और नीचे जल रूप में एक ही तत्व था। हिम रूप में वह जड़ीभूत था तथा द्रवित जल रूप मे वह चेतन था।

आध्यात्मिक अर्थ मे इससे अद्वैत की भी व्यंजना होती है।

(३) दूर दूर तक विस्तृत था हिम
　　स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता सी शिला चरण से
　　टकराता फिरता पवमान।

इसमें विस्तृत हिम को मनु-हृदय के समान ही स्तब्ध बतलाकर यह व्यंजित किया गया है कि स्थिर था—द्रवित नहीं हो रहा था। अतः भगवान् भास्कर भी अपना प्रभाव खो चुके थे।

शिलाओं को नीरवता सी कह कर पर्वत पर प्रगाढ़ निस्तब्धता व्यंजित की गई है और साथ ही स्थूल को सूक्ष्म की उपमा देकर स्वीप छायावादी प्रवृत्ति प्रकट की गई है।

'पवमान टकराता फिरता था' से पवन का औद्धत्य और शिलाओं का कठोर व्यक्ति के समान पारुष्य पूर्ण गौरव अभिव्यक्त किया गया है।

(४ पद्य) तरुण तपस्वी सा वह बैठा
　　साधन करता सुर-श्मशान;
नीचे प्रलय सिन्धु-लहरों का
　　होता था सकरुण अवसान।

इसमें मनु को तान्त्रिक एवं उस पार्वतीय प्रदेश को श्मशान कहकर हृदय-वि[illegible]एक भयानकता तथा सिन्धु-लहरों के सकरुण अवसान से श्मशान-जनित चीत्कार व्यक्त की गई है। इससे यह भी व्यक्त होता है कि चिन्तामग्न मनु की विपन्नावस्था पर मानो [illegible] आर्द्र सागर लहरों के ज्वार को शनैः शनैः शान्त कर रहा था।

१, २, ३, ४ पद्य—कामायनी पृष्ठ ३

(५) हुए हिम धवल, जैसे पत्थर,
बन कर ठिठुरे रहे अड़े।

इसमें देवदारुओं को 'ठिठुरे' कह कर उन पर भी मनु-अनुताप का प्रभाव प्रकट किया गया है तथा समवेदना से उनकी भी जड़ता व्यक्त की गई है।

(७) उधर उपेक्षामय यौवन का,
बहता भीतर मधुमय स्रोत।

इसमें उपेक्षामय यौवन से ध्वनित होता है कि ऊर्जस्वी वीर्य से परिपूर्ण यौवन ता सरस स्नेह-सरिता से तरंगित होना चाहिए था परन्तु ध्वंस से म्लान चित्त में चिन्ता की छाया ने दावा प्रचारित कर यौवन-कानन में नीरसता ला दी थी।

(९ पद्य) 'हँसती सी प्रकृति' से अभिव्यक्त किया गया है कि मनु की वह करुणापूर्ण कहानी प्रकृति के लिये कोई नूतन बात नहीं थी। ऐसी घटनाएं तो वह अगणित बार देख चुकी थीं अतः हँसती सी जान पड़ती थी। भुक्तभोगी एवं अनुभवी वृद्ध प्रायः सहसा आपद्ग्रस्त युवक की करुण कहानी पर व्यंग्य-हास करते ही है।

(१०) चिन्ता को 'विश्व वन की व्याली' कहकर कवि ने उसकी भीषणता एवं तद्ग्रस्त व्यक्ति की शुष्कता व्यक्त की है। साथ ही इसे ज्वालामुखी के कम्प सी मतवाली कह कर यह प्रकट किया है कि जिस प्रकार ज्वालामुखी में स्फोट से पूर्व एक कम्प होता है जो उसे प्रथम उन्मादी की भाँति हिलाता है उसी प्रकार चिन्ता भी हृदय-विदारण से पूर्व मनुष्य को चल-विचल कर देती है, जिससे मनःस्थिति अस्तव्यस्त हो जाती है।

(११) चिन्ता को 'अभाव की चपल बालिके' पुकार कर उसे अभाव-प्रसूता व्यक्त किया है और ठीक भी है क्योंकि वह किसी वस्तु के अभाव में ही उद्भूत होती है। यथा चपल बाला वृद्ध के मन को भी चञ्चल कर देती है उसी प्रकार यह भी मन को अस्थिर बनाती है।

इसे 'ललाट की खल लेखा' कह कर व्यक्त किया गया है कि यह दुर्भाग्य का ही परिणाम है।

पुनः इसे 'हरी भरी सी दौड़-धूप' संज्ञा देकर चिन्ताग्रस्त व्यक्ति की चेष्टा-शीलता व्यक्त की गई है क्योंकि चिन्तित व्यक्ति अन्ततोगत्वा तज्जनक अभाव के निवारण की चेष्टा करता ही है।

---

५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ
७ —वही, पृष्ठ ४
९ —वही, पृष्ठ ४
१०, ११, —वही, पृष्ठ ५

(१६) देवदल को 'सर्ग के अग्रदूत' कह कर सृष्टि में उसकी आदिजन्यता व्यक्त की गई है। तथा 'केवल अपने मीन हुए' इत्यादि से यह भाव प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार मत्स्यजाति स्वयं अपनी वृद्धि अतएव रक्षा का हेतु होकर पुनः सबल द्वारा निर्बल के निगल जाने से उसका विनाशक बन जाती है उसी प्रकार देव भी अपनी उन्नति कर अन्त में स्वयं ही अपने विनाश के कारण हुए।

(२१ पद्य) मनु ने देवों के निराशापूर्ण भविष्य को 'मणि-दीपों के अन्धकार-मय' कह कर यह भाव व्यक्त किया है कि यथा मणिदीपों के चतुर्दिक् लघु प्रकाश होता है परन्तु विशाल परिधि में अन्धकार ही व्याप्त रहता है उसी प्रकार देव-भविष्य भी प्रायः निराशा (अन्धकार) पूर्ण ही था।

(२५) 'देव सृष्टि की सुख-विभावरी, ताराओं की कलना थी' पद्यांश में रजनी में अगणित ताराओं के समान ही देवों के सुख की अपारता बतलाई गई है।

(२६) 'चलते थे सुरभित अञ्चल से जीवन के मधुमय निश्वास' से देवों के विलासी जीवन की आनन्दातिरेकता अभिव्यक्त होती है।

(३२) 'उषा सा यौवन' कह कर यौवन का नवोदय, औज्ज्वल्य और तेज व्यक्त किया गया है।

'मधुप सदृश निश्चित विहार' से देवों की रमणियों के प्रति मधुकर-वृत्ति व्यंजित की गई है।

(३४) 'मधु से पूर्ण अनन्त वसन्त' से सुख-सौन्दर्यमय जीवन-काल की व्यंजना हुई है।

(३६) अब न कपोलों पर छाया-सी, पड़ती मुख की सुरभित भाप; —इसमें मुख की सुरभित भाप को छाया सी कह कर यह व्यक्त किया गया है कि यद्यपि भाप तप्त होती है और छाया शीतल तथापि विलासी प्रेमियों का सुरभित निश्वास सुखकर होने से शीतल ही प्रतीत होता है, यथा अनुरक्त रमणी का प्रताड़ना और भर्त्सना को भी वरदान समझता है और कामिनी यदि मुग्धा हुई तब तो कहना ही क्या।

यदि ऐसा अर्थ हो कि देवों का ताम्बूलादि से सुरभित (भाप) निश्वास सुराङ्गनाओं के कपोलों पर छाया के समान अब न पड़ता था तो भाप और छाया

१६ —कामायनी, पृष्ठ ७
२१ पद्य—वही, पृष्ठ ७
२५, २६ —वही, पृष्ठ ८
३२ —वही, पृष्ठ ९
३४, ३६ —वही, पृष्ठ १०

का स्थूल अर्थ ही लिया जायगा क्योंकि निश्वास भी भाप ही होती है और छाया जैसी ही ईषत् श्याम वर्ण होती है। परन्तु पुनः व्यंजना यह होगी कि देवांगनाओं के कपोल दर्पण के समान कान्तिमान् थे जिनमें निश्वास की छाया तक लक्षित होती थी।

(३७) ......गीतों में, स्वर लय का होता अभिसार।

इसमें अभिसार से तात्पर्य मिलन से है। वैसे मूलतः नायक-नायिका के संकेत-स्थान में गुप्त प्रगाढ़ मिलन को अभिसार कहते हैं। स्वर पुल्लिग और लय स्त्री-लिंग है अतः यहाँ प्रेमी-युगलों का अभिसरण भी व्यंजित होता है।

(३८ पद्य) 'अतरिक्ष आलोक अधीर' मे अधीर से प्रकाश की इतनी प्रचुरता व्यंजित हो रही है कि द्रष्टा को नभोगर्भ चल-विचल सा दृष्टिगोचर होता था।

'सब मे एक अचेतन गति थी, जिससे पिछड़ा रहे समीर।'

इसमे देवों की विलास-प्रियता-जन्य जड़ता एव प्रमादाधिक्य की अभिव्यक्ति हो रही है।

(३९) 'अंग भंगियों का नर्त्तन' से देवांगनाओं की प्रिय आकर्षण के लिये उत्तेजक चेष्टाएं तथा 'मधुकर के मरद-उत्सव सा, मदिर भाव से आवर्त्तन' से देवों का उन्मादपूर्ण नर्त्तन व्यंजित होता है। 'मधुकर' शब्द से प्रतीत होता है कि वहाँ स्वकीय और परकीय का भी भेद न था।

(४०) ......अरुण वे, नयन भरे आलस अनुराग—इसमें विलास-मग्न (रतिक्रीड़ा या संगीत आदि मे व्यस्त) होने से सुरांगनाओं का रात्रि-जागरण व्यक्त हो रहा है। तथा—

'कल कपोल था जहाँ बिछलता, कल्पवृक्ष का पीत पराग'

से व्यंजित होता है कि उनके प्रभापूर्ण गुलाबी गाल मधुर रजनी मे रति-संगर मे शक्ति क्षीण होने से पीले पड़ गये थे।

(४१) 'विकल वासना के प्रतिनिधि वे' में 'विकल' से वासना का अतृप्तत्व और 'प्रतिनिधि' से देवो का अतिमानुषी विलासाधिक्य व्यक्त हो रहा है।

(६२) 'गरल जलद की खड़ी झड़ी में' मे 'खड़ी' शब्द से वर्षा की मूसला-धारता व्यक्त हो रही है क्योंकि झड़ी प्रकृतितः खड़ी नही होती वरन् मूसलाधार वर्षा में नूतन जल उत्तरोत्तर जल में इतनी सत्वर गति से मिलता जाता है कि तारतम्य न टूटने से वह स्थिर सी प्रतीत होती है।

---

३७ —कामायनी, पृष्ठ ११

३८, ३९, ४०, ४१ पद्य—वही, पृष्ठ ११

६२ —वही, पृष्ठ १६

(६३) 'चपलायें उस जलधि-विश्व में, स्वयं चमत्कृत होती थीं।' इसमें 'चमत्कृत' शब्द से बिजलियों के चमकने के साथ-साथ उनका भयभीत होकर चौंकना भी व्यक्त हो रहा है।

(६४ पद्य) 'आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्रमय सा विष्कंभ'। इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि जिस प्रकार नाटक के प्रथम-अंक में ही भूत या भावी घटनाओं की सूचना किसी निम्न कोटि के पात्र द्वारा दी जाती है उसी प्रकार मैं भी एक अभागा व्यक्ति हूं जिसे सृष्टि के आरम्भ में ही देव-ध्वंस की करुण गाथा सुनाने का क़ार्यभार प्राप्त हुआ है।

(६५) 'मृत्यु, अरी चिरनिद्रे! तेरा, अंक हिमानी सा शीतल'। यहाँ मृत्यु को चिर-निद्रा कह कर जीवन की अनन्त समाप्ति व्यक्त हुई है तथा अग्रिम अंश से उसे दुःखाभाव-प्रसविनी प्रकट किया गया है। साथ ही मृत्यु से काय की हिम-समान शीतलता भी व्यक्त होती है।

महा-नृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पन्दनों की तू माप,
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा होकर अभिशाप।

इसमें 'सम' संगीत का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ संगीत में वह स्थान है जहाँ गाने बजाने वालों का सिर या हाथ और नाचने वालों के पैर स्वयं ही स्पन्दित हो जाते हैं। सम पर ही गीत, वाद्य और नृत्य का आरम्भ होता है और अन्त भी यहीं होता है। इसी स्थल पर थाप या पैर कस कर पड़ता है।

मृत्यु को सम कह कर यह व्यंजित होता है कि विश्व में जो काल तांडव हो रहा है, मृत्यु उसमें भयंकर पद-चाप है। पूर्व जीवन यहीं समाप्त होता है और नूतन जीवन उपलब्ध होता है।

मृत्यु को स्पन्दनों की माप कह कर यह प्रकट किया गया है कि यहाँ चेष्टाओं की इति हो जाती है। इससे यह भी व्यक्त होता है कि आयु श्वासों से है और मृत्यु उनकी परिमिति है।

अग्रिम अर्धांश में यह बतलाया गया है कि यद्यपि मृत्यु शाप रूपा है तथापि सृष्टि की उद्भाविका वही है। गीता में भी कहा है—

---

६३ —कामायनी, पृष्ठ १६
६४, ६५ (पद्य) वही, पृष्ठ १८
६६ —वही, पृष्ठ १९

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥[1]

(६७ पद्य) 'अन्धकार के अट्टहास सी, मुखरित सतत चिरंतन सत्य ।' इसमें मृत्यु को अन्धकार के अट्टहास से मुखरित कह कर यह ध्वनित किया गया है कि जिस प्रकार अन्धकार में कोई व्यक्ति अट्टहास करे तो उसकी विकृत क्रिया तो प्रत्यक्ष होती है परन्तु वह स्वयं अदृष्टिगोचर नहीं होता उसी प्रकार मृत्यु का विनाश-कार्य तो दृष्टिगोचर होता है परन्तु वह स्वयं साकार रूप में संलक्ष्य नहीं है और यह एक सार्वकालिक (अनादि-अनन्त) सत्य है ।

पुनः इसे छिपी 'सृष्टि के कण कण में तू' कह कर विश्व के कण-कण को नाशवान बतलाया है और इस तथ्य को 'नित्य सुन्दर रहस्य' इसलिए कहा गया है क्योंकि इस रहस्य को कोई खोल न सका । अगणित ज्ञानियों ने मौखिक एवं शास्त्र रूप में प्रचुरता से कहा परन्तु कोई 'इदमित्थम्' कह कर इसे सीमित न कर सका अतएव सुन्दर है क्योंकि सुन्दर वस्तु की ही चर्चा अधिक होती है ।

(६८) 'आकर्षण-विहीन विद्युत्कण, बने भारवाही थे भृत्य' इससे यह भाव व्यंजित होता है कि प्रलय के कारण विद्युत्परमाणु पृथक्-पृथक् हो गये थे और अब भी वे संघात रूप में न आकर स्वीय स्वतन्त्र सत्ता में इस प्रकार घूम रहे थे जिस प्रकार भारवाहक भृत्य, इतस्ततः आते-जाते हैं ।

(६९) 'मृत्यु सदृश शीतल निराश ही' इसमें निराशा को शीतल बतला कर यह ध्वनित किया गया है कि जिस प्रकार मृत्यु मनुष्य को शीतल कर देती है उसी प्रकार निराशा भी उसे ठंडा-उत्साहहीन मृतप्राय बना देती है ।

आशा

(१ पद्य) 'उधर पराजित काल-रात्रि भी, जल में अन्तर्निहित हुई ।' इसमें 'जल में अन्तर्निहित होने से' 'जल में डूब मरना' व्यंजित हो रहा है क्योंकि पराजित व्यक्ति के लिए ऐसे मुहावरे का प्रयोग होता भी है ।

(४) 'जगीं वनस्पतियाँ अलसाई, मुख धोतीं शीतल जल से' । इससे ऐसे सुप्त व्यक्तियों का चित्र भी अंकित हो जाता है, जो शुक्लाम्बर ओढ़े पड़े थे किन्तु निद्रा भंग होने पर अलसाते हुए जगे और पुनः उन्होंने शीतल जल से मुख प्रक्षालित किए ।

---

१ —गीता, अध्याय २, श्लोक २२
६७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १९
६८, ६९ —(वही), पृष्ठ २०
१, ४ —(वही), पृष्ठ २३

(५) 'नेत्र निमीलन करती मानो, प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने' इससे एक सुप्तावस्था से प्रबुद्ध हुई रमणी का चित्र भी आंखों के समक्ष आता है, जो पुनः नेत्र निमीलित करती और अन्ततः उन्मिषित कर लेती है।

इसी प्रकार—

'जलधि लहरियों की अँगड़ाई बार बार जाती सोने'; इससे भी एक ऐसी सुन्दरी का दृश्य समक्ष आता है, जो सोने से पूर्व बार-बार अँगड़ाई लेती है।

(६) सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किए-सी ऐंठी-सी।

इसमें 'धरा-वधू' रूपक से उस वधू का चित्र व्यंजित होता है जो पूर्ण खिली परन्तु अस्पृष्ट कली के समान सुहाग की प्रथम मधुर रात्रि में अपने प्राणप्रिय के साथ शय्या पर सुख का आनन्द लेने गई थी परन्तु पुरुष ने ऐसी रसपूर्ण निर्दयता से अंग-मर्दन किया कि उसका कोमल कलेवर चूर-चूर हो गया। अतएव वह निशा-घटित रति में पति के आवेग पूर्ण आवेश को स्मरण करती हुई मान किए संकुचित सी इसलिए ऐंठी बैठी है कि वह उससे अब न बोलेगी। उसे संकोच लज्जावश हो रहा है कि शैथिल्य और वैवर्ण्य को देख कर परिजन क्या कहेंगे।

(७) 'जैसे कोलाहल सोया हो, हिम शीतल जड़ता सा श्रांत।' यहाँ 'श्रान्त' से 'श्रान्त पथिक के समान' इस भाव की व्यंजना हो रही है।

(८ पद्य) 'इन्द्रनील मणि महा चषक था, सोम रहित उलटा लटका'। इसमें उपमेय आकाश का नाम नहीं लिया गया है। इससे यह भाव व्यंजित हो रहा है कि सोम (चन्द्र) विहीन नील गगन ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई सोम रस से शून्य नीलम का महाकाय प्याला उलटा लटक रहा हो।

'आज पवन मृदु सांस ले रहा' से ध्वनित हो रहा है कि पवन भी मानो प्रलय से भीत हो कर रुद्ध हो गया था और अब भीति-निमित्त लुप्त हो जाने पर चैन की श्वास लेने लगा है—मन्द-मन्द चलने लगा है। भय के पश्चात् तज्जनित जड़ता के कारण गति में त्वरितत्व आता भी नहीं है।

(९) 'वह विराट् था हेम घोलता' से व्यक्त हो रहा है कि उस नीलम के चषक रूप आकाश में सुवर्ण रंग घोला जा रहा था अर्थात् उषा का सुनहली आलोक सर्वत्र छिटकने लगा था और वसुन्धरा उसकी प्रभा से अन्धकार-मुक्त हो गई थी।

---

५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २३
६, ७ — (वही), पृष्ठ २४
८, ९ पद्य— (वही), पृष्ठ २४

(११) 'किसका था भ्रू-भंग प्रलय सा, जिसमें ये सब विकल रहे'। इससे उस अलक्ष विराट् सत्ता का अपरिमेय शक्तिशालित्व ध्वनित हो रहा है।

(१३) 'हाँ, कि गर्व-रथ में तुरग सा, जितना जो चाहे जुतले'। इस पद्यांश से यह भाव व्यक्त हो रहा है कि जिस प्रकार रथ में जुता कोई तुरंग यह समझे कि वह रथ को चला रहा है परन्तु वास्तव में वह भ्रमित है क्योंकि चला तो वह रहा है जो इस अश्व का प्रेरक है, इसी प्रकार अभिमानवश नर या अमर भले ही यह समझलें कि वे विश्व के संचालक हैं परन्तु वास्तव में तो वही विराट् शक्ति संचालक है जो इस सबका नियमन करती है।

(१९) यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
सदय हृदय में अधिक अधीर;
व्याकुलता सी व्यक्त हो रही
आशा बन कर प्राण समीर!

इसमें आशा को 'मधुर-स्वप्न सी झिलमिल कह कर यह व्यक्त किया है कि यह स्वप्न की भाँति विरल सुख देने वाली है परन्तु यह सुख बड़ा मधुर होता है। 'व्याकुलता सी' उपमा से यह प्रकट किया है कि आशा का एक रूप तो है सुख-संचार और दूसरा है व्यग्रता-प्रचार। आशोद्भूति के पश्चात् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मानव-मन में व्यग्रता अवश्यम्भावी है। पुनः आशा को 'प्राण समीर' इसलिए कहा गया है कि वह प्राण वायु के समान जीवनदायिनी है।

(२० पद्य) वह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण सी छविमान;
स्मिति की लहरों सी उठती है
नाच रही ज्यों मधुमय तान।

आशा को 'मधुर जागरण सी' कह कर यह भाव अभिव्यक्त किया है कि जिस प्रकार मृत्यु या हानि-दर्शन से युक्त दुःस्वप्न के पश्चात् जाग्रत व्यक्ति उनको अघटित जान कर सुख का अनुभव करता है अतः जागरण को मधुर समझता है, उसी प्रकार ध्वंस-जनित चिन्ता के उपरान्त आशा भी प्रिय और मधुर प्रतीत होती है। उसे 'छविमान' इसलिए कहा गया है कि उपर्युक्त मधुर जागरण से जिस प्रकार मुख पर प्रसन्नता से कान्ति आ जाती है उसी प्रकार आशा से भी मुख दमकने लगता है।

११, १३ —कामायनी, पृष्ठ २५
१९, २० —(वही), पृष्ठ २७

आशा से मुख कान्तिमान् हो जाता है अतएव उसे 'स्मिति की लहरों सी' कहा गया है। मन्द मुसकान की लहरें भी मुख पर ओप चढ़ा देती हैं।

अन्तिम चरण में आशा को मधुमय तान के समान नाचना इसलिए कहा है कि उसके सत्ता में आते ही मानस अगणित मधुर विचार-लहरों में तरंगित हो जाता है।

इससे आशोत्पत्ति की प्रक्रिया इस प्रकार हुई—पहले आशा सोई पड़ी रहती है, फिर जगती है, पुनः उत्थित होती है और तदनन्तर हृदय को गुदगुदा कर चक्कर काटने लगती है। आशा के इस रूप से एक ऐसी रमणी का चित्र भी दृष्टिगत होता है, जो किसी दुःस्वप्न के पश्चात् जगकर स्वप्नदृष्ट को असत्य जानकर प्रसन्न होती है और पुनः उठ कर हर्षोल्लास से नाच उठती है।

(२१) 'जीवन ! जीवन ! की पुकार है, खेल रहा है शीतल दाह'। इसमें दाह (जलन) को शीतल कहा गया है अतः विरोध होने से 'शीतल' का 'मधुर' अर्थ परिलक्षित होता है क्योंकि वह हृदयगत दाह जीवन के नव प्रभात से मधुर हो गया है।

'जीवन' शब्द श्लिष्ट है अतः उसके दो अर्थ हैं—जीवन और जल। 'जल' अर्थ यहाँ व्यंजना से अभिप्रेत है क्योंकि दाह-शान्ति के लिए जल ही तो चाहिए।

(३० पद्य) 'उस असीम नीले अंचल में, देख किसी की मृदु मुसक्यान'। इससे आकाश में प्रभातोदित भगवान् भास्कर की आभा व्यञ्जित हो रही है।

(३४) वह अनन्त नीलिमा व्योम की
जड़ता सी जो शान्त रही,
दूर-दूर ऊँचे से-ऊँचे
निज अभाव में भ्रान्त रही।

इसमें व्योम की नीलिमा को जड़ता सी शान्त कह कर उसकी जड़ता ही व्यक्त की गई है। आकाश जड़ तत्व ही है। अग्रिम अर्धांश में उसके अभाव को ऊँचा से ऊँचा कह कर यह प्रकट किया है कि आकाश अनन्त उच्चता लिए हुए है परन्तु वह शून्य है। भ्रान्त की भाँति अपने को बड़ा समझना उसकी भूल है क्योंकि नीलिमा कुछ नहीं है, यह तो अभाव है जो अक्षि-शक्ति की परिधि से परे नीला प्रतीत होता है। (अतः नीचे पड़ी पृथ्वी का सुख सौन्दर्य इससे बढ़ कर है—अग्रिम पद्य)

---

२१ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २७
३० पद्य—वही, पृष्ठ २९
३४ —वही, पृष्ठ ३०

(४८) 'प्रश्न उपस्थित नित्य नये थे, अन्धकार की माया में'। इसमें 'अन्धकार की माया' से तात्पर्य 'अन्धकारमय भावी जीवन' से है।

(५०) 'विश्व रंग में कर्मजाल के, सूत्र लगे घन हो घिरने' इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि जिस प्रकार आकाश में अनेक रंगों से सुरंजित हो घन घिर आते हैं और चतुर्दिक एक जाल सा छा जाता है, उसी प्रकार मनु भी सांसारिक रंगों से रंगे हुए कर्म-सूत्रों का जाल बुनने लगे अर्थात् संसार के विविध कर्मों में वे निरत हो गये।

(५२) 'विजन जगत की तन्द्रा में, तब चलता था सूना सपना'। इससे यह भाव प्रकट होता कि उस निर्जन प्रान्त में मनु के हृदय में अलस भाव से कल्पनाओं का जाल तन रहा था।

(५७) व्यक्त नील में चल प्रकाश का
कंपन सुख बन बजता था;
एक अतीन्द्रिय स्वप्न लोक का
मधुर रहस्य उलझता था।

जब निर्मल मुक्त आकाश में चन्द्र की चञ्चल रश्मियों से छिटकी शीतल चन्द्रिका मनु के शरीर को स्पर्श करती तब उन्हें किसी रमणी के स्पर्श से प्रसूत सिहरन का सुख मिलता था और उनके मन में एक अतीन्द्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझा सा प्रतीत होता था। तात्पर्य यह है कि वे अलौकिक, काल्पनिक लोक में विचरण करने लगते, जो रहस्यमय होता हुआ भी मधुर था। उनके मानस पटल पर किसी का दिव्य रम्य चित्र अंकित हो जाता। यद्यपि वह चित्र कल्पनाजनित (स्वप्न लोक का) होने के कारण अतीन्द्रिय—नेत्र-अगोचर था—अतएव रहस्यपूर्ण भी था तथापि मधुर था क्योंकि उसके मानसिक दर्शन से भी महान् सुख उपलब्ध होता था।

(५९) 'मिलन लगा हँसने जीवन के, ऊर्मिल सागर के उस पार'। इससे यह अभिप्राय अभिव्यक्त हो रहा है कि प्राकृतिक सौन्दर्य से गुदगुदाया मनु-मानस किसी अपरिचित सहचरी के काल्पनिक चित्र को अंकित करने लगा था परन्तु उनके तरंगित मानस-सागर के तीर पर खड़ी प्रेयसी के मिलन के सुख द्वारा अपनी छटा

४८ —कामायनी, पृष्ठ ३३
५० —वही, पृष्ठ ३३
५२ —वही, पृष्ठ ३४
५७ —वही, पृष्ठ ३५
५९ पद्य—वही, पृष्ठ ३६

छिटकाये जाने पर भी उससे सहवास प्राप्त करना अभी उतना ही दुर्गम था जितना समुद्र के इस पार खड़े प्रेमी के लिए उस पार खड़ी प्रिया का।

(६०) तप से संयम का संचित बल
तृषित और व्याकुल था आज;
अट्टहास कर उठा रिक्त का
वह अधीर तम, सूना राज।

इसका भाव यह है कि तप के समय संयम रखने से (ब्रह्मचर्य-पालने से) जो बल शरीर में संचित हुआ था, वह प्रेम-पिपासा से विकल होने लगा था अर्थात् किसी कामिनी से गाढ़ालिंगन कर अपना सफल प्रयोग चाहता था। अतः (विरक्तिवश) अब तक प्रेम से शून्य उनके हृदय में अब काल्पनिक प्रिया के मनोरम चित्र से उद्भूत अधीरता, तत्प्राप्ति की दुर्गमता से प्रसूत निराशा और उससे विरहित एकाकीपन ये सभी मानो उनका उपहास करने लगे थे अर्थात् बल पकड़ कर उन्हे पीड़ा दे रहे थे और वे निरुपाय थे।

(६१) 'आशा की उलझी अलकों से, उठी लहर मधुगन्ध अधीर'। इसका आशय यह है कि जिस प्रकार उलझी अलकों को सुलझाते समय मादक गन्ध की तरंगे उठती है, उसी प्रकार काल्पनिक प्रिया की उलझी आशा से भी मनु के मन में सुख की लहर दौड़ गई। यहाँ आशा को उलझी इसलिए कहा गया है कि सहचरी अभी निश्चित नहीं थी।

(६४) 'संवेदन का और हृदय का, यह संघर्ष न हो सकता'। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कल्पना-जगत का ही मानस-भूमि पर साम्राज्य होता तो उसका माधुर्य वर्णनातीत होता और फिर अभाव की अनुभूति और हृदय का संघर्ष न होता। यौवन में संचित बल के सफल प्रयोग के लिए किसी से प्रेम की आकांक्षा होती है परन्तु उसका सम्मिलन नहीं होता यहाँ यही संघर्ष है। यदि केवल कल्पना ही सुख-सर्वस्व होती और भौतिक रूप में वस्तु-प्राप्ति का इतना महत्व न होता तो स्थूल अभाव के न होने से विरोध ही न होता।

(६६) तम के सुन्दरतम रहस्य हे,
कांति किरण रंजित तारा!
व्यथित विश्व के सात्विक शीतल,
बिंदु, भरे नव रस सारा।

६०, ६१ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ३६

६४, ६६ पद्य—वही, पृष्ठ ३७

इसमें तारे को 'तम का सुंदरतम रहस्य' इसलिए कहा गया है कि तिमिराच्छन्न रात्रि मे प्रकाशाभाव रूप अन्धकार के मध्य यह देदीप्यमान तारक कहाँ से आया, यह एक महान् रहस्य है—एक महान् आश्चर्य है।

आगे उसे 'व्यथित विश्व का सात्विक शीतल विन्दु' कहा है। 'विन्दु' इसलिए कि श्रान्त (दिवस कार्य से थके) और क्लान्त (सूर्यातप से शिथिल) विश्व जब रात्रि में सुख प्राप्ति के लिए शय्याशायी होता है तो अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि का यह केन्द्र विन्दु होता है। इसके अतिरिक्त वह श्वेत बूँद सा दृष्टिगोचर भी होता है तथा उसी की भाँति कुछ कम्पित सा भी प्रतीत होता है। बूँद की भाँति वह शीतल और निर्विकार भी होता है। सुधाकलश के समान व्योम में विद्यमान सुधाकर से अपेक्षाकृत वह इतना लघु भी है कि उसे रसभरा विन्दु ही कह सकते है। रसभरा इसलिए कि वह आनन्ददायक होता है।

(६७) आतप-तापित जीवन सुख की
शान्तिमयी छाया के देश;
हे अनन्त की गणना ! देते
तुम कितना मधुमय संदेश।

इसमें जीवन को 'आतप-तापित' कह कर 'आतप' में श्लेष से दो भाव व्यक्त किये हैं—(१) दिन में व्याप्त सूर्यातप, और (२) संसार-कार्य के निमित्त किये गये संघर्ष से उद्भूत दुख। तारे का इस प्रकार सन्तप्त जीवन के सुख की 'शान्तिमयी छाया का देश' कह कर यह भाव व्यंजित किया है कि तारा जीवन का शान्तिमय सुख देने वाली शीतलता का आकर्षणपूर्ण केन्द्र विन्दु है।

अग्रिम पंक्ति में सम्बोधन से विचित्र वाक्य-विन्यास द्वारा उसकी असंख्यता व्यक्त की गई है।

'देते तुम मधुमय संदेश' इससे यह आशय प्रतीत होता है कि तारे अपने मनोरम रूप से रजनी को माधवी बना देते है, जिससे सारा विश्व सुख का अनुभव करता हुआ मधुर निद्रा में निमग्न हो जाता है।

(६८ पद्य) आह शून्यते ! चुप होने में, तू क्यों इतनी चतुर हुई'। इसमें 'शून्यते' से लक्षणा द्वारा 'शान्त निशा' अर्थ परिलक्षित हो रहा है। पुनः उस रात्रि को चुप होने में चतुर कहा गया है। वह इसलिए कि जो व्यक्ति जितना मौन रहता है वह उतना ही कुशल है क्योंकि उसका रहस्य प्रायः गुप्त रहता है और जो मुखर या अतिजल्पी होता है, उसका कोई रहस्य गुप्त नही रहता अतः उसे प्रायः लोग मूर्ख या अकुशल कहते है। इसीलिए यह उक्ति चली आ रही है कि 'अधिक बोलना

६७, ६८ —कामायनी, पृष्ठ ३८

अच्छा नहीं'। और रात्रि तो शून्यतामय ही है तथा शून्यता निस्तब्धता का ही पर्याय सा है।

आगे रजनी को 'इन्द्रजाल-जननी' द्वारा सम्बोधित कर यह ध्वनित किया है कि वह इतनी मनमोहक होती है कि समस्त संसार पर जादू छा जाता है। रात्रि की साज-सज्जा उद्दीपक होती है। नाटक, संगीत, वाद्य, नृत्य, सुख एवं यहाँ तक कि वार्तालाप में भी जो आनन्द रात्रि को आता है वह दिन में नहीं। इसके अतिरिक्त निद्रा तथा जगते पड़े रह कर चिन्तन का भी जो आनन्द रात्रि को मिलता है वह अन्य समय मे नहीं। अतएव वह अत्यधिक मधुर होती है।

(६९) जब कामना सिन्धु तट आई
ले संध्या का तारा दीप;
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी
तू हँसती क्यों अरी प्रतीप।

इसके प्रथम अर्धांश से स्त्रियों का संध्या समय विशेष पर्वों पर किसी सरिता, सरोवर या समुद्र में दीप सिराना भी अभिव्यक्त हो रहा है।

तृतीय चरण में 'सुनहली साड़ी' से अभिप्राय सन्ध्याकालिक अरुण आभा से है।

रजनी के हँसने से तात्पर्य है चन्द्रिका छिटकाना। और प्रतीप (वाम) उसे इसलिये कहा गया है कि वह संध्या की अरुण प्रभा की विनाशिका है। यद्यपि कामना और रजनी दोनों ही स्त्रीवाची है अत: कोई विशेष आपत्ति नहीं, तथापि किसी की इच्छा के प्रतिकूल उस की साड़ी फाड़ना पर्दा फास करना है अत: अशिष्ट कर्म है इसीलिये रजनी वामाचरणा है।

(७०) इस अनन्त काले शासन का
वह जब उच्छृंखल इतिहास;
आंसू औ तम घोल लिख रही
तू सहसा करती मृदु हास।

इसमें 'अनन्त काले शासन' से अभिप्राय 'प्रकृति का व्यापक कठोर शासन' है और 'उच्छृंखल इतिहास' से क्रूर व्यापार की गाथा' है। 'आँसू' से 'विन्दु रूप तारे' अर्थ व्यक्त हो रहा है। 'करती मृदु हास' से यह अर्थ प्रकट होता है कि तू चाँदनी छिटका देती है।

भाव यह है कि जब सन्ध्या तम रूप स्याही में तारक-गुच्छ रूप अश्रु-जल डालकर प्रकृति के व्यापक कठोर शासन की क्रूर गाथा लिखती है तो उसी समय

६९, ७० पद्य—कामायनी, पृष्ठ ३८

रात्रि चन्द्र-प्रभा के रूप में हँसती हुई उसका उपहास करती है और वह मानो यह सोचकर कि प्रकृति के कठोर शासन का इतिहास आजतक कोई नहीं लिख सका है और न लिख सकेगा, फिर इसका प्रयत्न निपट मूर्खतापूर्ण है।

(७१) विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से—
आती चूम चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से ?

कमल दिन में खिलता है और विश्व भी दिन में ही सूर्यातप से प्रकाशित होता है। जिस प्रकार विकसित कमल पर भ्रमरी आती है, उसी प्रकार दिवालोकित विश्व पर रजनी आती है अतएव विश्व में कमल और रजनी में मधुकरी का आरोप किया गया है। मधुकरी को मृदुल कह कर रजनी की मदुलता भी प्रकट की गई है। यथा वंश-भेदिनी भ्रमरी कठोर होती हुई भी कमल के लिये अहित कर न होने से उस पर बड़ी कोमलता से बैठती हैं अतएव मृदुल है, उसी प्रकार कठोर कर्मा भयावह रात्रि भी विश्व को सुख-निद्रा में निमग्न कराने के कारण बड़ी सुखस्पर्श है।

मनु ने 'किस कोने से' प्रश्न इसलिये किया है कि रात्रि-आगमन से पूर्व उसका कोई ठिकाना प्रतीत नहीं होता।

वह रात्रि आती है और विश्व को चूम-चूम कर चली जाती है। इसमे रात्रि का वारबार पुनरागमन व्यक्त किया है। भ्रमरी भी कमल पर इतने कोमल भाव से आती और मधु या पराग लेकर क्षण भर में ही चल देती है कि वह पुनः पुनः उसे चूमती सी प्रतीत होती है। रात्रि के चुम्बन से यह भाव अभिव्यक्त होता है कि इसका स्पर्श उतना ही मृदुल और मधुर है जितना चुम्बन का।

'पढ़ी हुई किस टोने से' इसलिये कहा गया है कि रात्रि सुख-निद्रा में सुला कर मानो एक जादू कर देती है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इसे कहीं सीखा है।

(७२) 'तुहिन कणों, फेनिल लहरों में, मच जावेगी फिर अंधेर।' इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि हे रात्रि ! यदि तू चन्द्रिका के रूप में हास बिखेरती ही रहेगी तो ओस-बिन्दुओं और फेनिल लहरों में भी खलबली मच जायगी अर्थात् ओस-बिन्दु विचलित हो जायेंगे— मचल जायेंगे (चमक से कम्पित जैसे प्रतीत होना ही उनका मचलना है) और लहरों में ज्वार आ जायगा।

७१, ७२ —कामायनी, पृष्ठ ३६

तुहिन कणों से—शीतल बिन्दुओं से—ठंडे पड़े हुए अर्थात् शैथिल्यपूर्ण मनुष्य और फेनिल लहरों से गर्भवती स्त्रियों की व्यंजना भी हो रही है। चाँदनी सभी में उन्माद पैदा करती है।

(७३) घूंघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती-सी आती;
विजन गगन में किसी भूल सी
किसको स्मृति पथ में लाती ?

इसमें प्रश्न किया गया है कि हे रजनी ! तू किसे देखकर मुस्कराती हुई ठिठकती सी आ रही है। इसमें रजनी के घूंघट उठाने से तात्पर्य है चन्द्र-प्रभा से तमावगुण्ठन का उद्घाटन अर्थात् चाँदनी से जो अन्धकार हटता सा प्रतीत होता है वही मानो रजनी-रमणी का कृष्णाम्बरकृत घूंघट का हटना है।

'मुस्कराती' पद से उसका 'ज्योत्स्ना-विकास' अभिव्यक्त हो रहा है। और 'ठिठकती सी' उसे इसलिये कहा गया है कि रात्रि-गत अंधकार चन्द्रिका से कुछ रुकता फिर बढ़ता, फिर रुकता और फिर बढ़ता सा प्रतीत होता है।

अग्रिम अर्धांश में रात्रि को 'निर्जन आकाश में किसी को स्मरण करती सी' कहा गया है। यह इसलिये कि एकान्त में स्मृति उद्बुद्ध होती है और स्मृति के समय मुख पर कभी आशा और कभी निराशा से कभी चमक और कभी मलिनता आती-जाती रहती हैं, इसी प्रकार ज्योत्स्ना-स्नात रजनी में भी मन्द प्रकाश और मन्द अन्धकार के मिश्रण से मानो दोनों भाव व्यक्त होते हैं। स्मरण करता हुआ भूला व्यक्ति कुछ ठिठक-ठिठक कर ही चलता है अतः रात्रि भी इसी प्रकार आ रही है।

इस पद्य से एकान्त में ठिठक-ठिठक कर जाती हुई स्मरण-मग्न किन्तु अप्रसन्नवदना अभिसारिका का चित्र भी अभिव्यक्त होता है—अंकित हो जाता है।

(७४) 'रजत कुसुम के नव पराग सी, उड़ा न दे तू इतनी धूल—
इस ज्योत्स्ना की……।'

इसमें 'रजत-कुसुम' से तात्पर्य है 'चन्द्रमा'। और ज्योत्स्ना को पराग बनाया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है मानो रात्रि चन्द्रमा रूप पुष्प से ज्योत्स्ना रूप पराग (पुष्प-रज) उड़ा रही है। मनु उससे अधिक रज न उड़ाने के लिए कह रहे हैं क्योंकि हो सकता है कि वह स्वयं ही कहीं इसमें भूल जाय—खोई जाय। कभी-कभी कोई व्यक्ति जब अत्यधिक धूल उछालता है तो वह स्वयं ही उसमें भ्रमित हो जाता है

७३, ७४ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ६९

और कुछ समय के लिये खोया जाता है। चाँदनी के आधिक्य से कालिमा रूप में रात्रि की सत्ता का भी विनाश हो सकता है।

(७५) 'छूट पड़ा तेरा अंचल' में 'अंचल' से तात्पर्य 'आकाश' से है और 'देख बिखरती है मणिराजी' में 'मणिराजी' का आशय 'तारक माला' है।

(७६) फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली!
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली भाली।

नीले आकाश मे जड़े हुए तारों को देख कर मनु मुग्धा नायिका के समान रजनी से पूछते है कि यौवन की मतवाली तेरे नीलाम्बर में छिद्र तो नहीं हो गये, जिनमे से तेरे अंग प्रत्यंगों के श्वेत विभा भरे अंश दमक रहे हैं। और जिन्हें देखकर यह निर्धन जगत तेरी भोली भाली छवि को घूर घूर कर देख रहा है।

रजनी नायिका को यौवन की मतवाली इसलिये कहा है कि उत्तरीय फटा हुआ है और उसे इसका ज्ञान तक नही। मतवाला व्यक्ति ही बेसुध हुआ करता है।

जगत को अकिंचन इसलिए कहा है कि उसकी रूप-पिपासा कभी शान्त नहीं हुई अतः वह सदैव इस विषय में अकिंचन है।

'लूटता' से तात्पर्य 'सतृष्ण आँखों से पीना' है।

रजनी को मुग्धा के समान चित्रित करने से उसकी छवि को 'भोली भाली' कहा गया है।

इस प्रकार इनसे मुग्धा नायिका का चित्र भी ध्वनित होता है।

(७७) ऐसे अतुल अनत विभव में
जाग पड़ा क्यों तीव्र विराग?
या भूली सी खोज रही कुछ
जीवन की छाती के दाग?

इसमें 'विभव' से तात्पर्य चन्द्र एवं तारों से हुआ अपार सौन्दर्य है। 'विराग' से रात्रिगत मालिन्य रूप उदासी व्यक्त हो रही है।

'जीवन की छाती के दाग' से अभिप्राय है 'यौवन में प्राप्त आघातों से हृदय पर लगे चिन्ह'। सम्भवतः यहाँ ये चिन्ह हैं तारे और रजनी भूली सी यह सोच रही है कि ये कौन से आघात हैं जिनके ये चिन्ह हैं।

७५, ७६, ७७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ४०

श्रद्धा

(२ पद्य) 'और चंचल मन का आलस्य !' इसमें मौन को चंचल मन का आलस्य कह कर यह भाव व्यक्त किया है कि मौन चंचल मन का निरोधक है क्योंकि मन का चांचल्य यहीं शान्त होता है।

(३) 'प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द' इसमें श्रद्धा की मधुर वाणी को आदि कवि [illegible] वाल्मीकि के मुख से निमृत प्रथम सुन्दर छन्द के समान कहा है।

एक दिन मुनि वाल्मीकि ने क्रीड़ा परक क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को एक व्याध द्वारा आहत देख कर शाप दिया जो निम्न श्लोक के रूप में उनके मख निकला—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

लौकिक एवं संस्कृत छन्द में यह प्रथम श्लोक था अतः वाल्मीकि आदि कवि कहलाये।

श्रद्धा की वाणी को आदि कवि की इस वाणी के समान इसलिए कहा गया है कि मानव-सृष्टि के आरम्भ में श्रद्धा की यह वाणी सहानुभूतिवश एक पुरुष के प्रति उसी प्रकार प्रथम थी जैसी कि क्रौंच के प्रति सहानुभूतिपूर्ण वाल्मीकि की।

(५) 'चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम' इसमें श्रद्धा को चन्द्रिका से आवृत श्याम घन इसलिए कहा गया है कि यद्यपि वह श्यामा नहीं थी परन्तु नीलरोमों वाला मेष चर्म पहने हुई थी तथा गौरांगों की शुभ्रद्युति उस पर व्याप्त हो रही थी।

(८) 'खिला हो ज्यों बिजली का फूल' इसमें श्रद्धा का गुलाबी रंग ध्वनित हो रहा है।

(९) आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम ;
अरुण रविमंडल उसको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

इसमें 'घनश्याम' श्रद्धा के केशों एवं मेष-चर्म रूप परिधान दोनों के लिए आया है तथा 'अरुण रवि-मंडल' उसके मुख के लिए।

श्रद्धा के मुख को 'अरुण रविमंडल' की उपमा इसलिए दी गई है कि वह गुलाबी था परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार स्त्री के मुख की उपमा चन्द्रमा से ही दी जाती है और पुरुष के मुख की सूर्य से। यद्यपि रवि-मंडल संध्याकालिक है अतः

---

२ ३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ४५
५, ८, ९ —(वही), पृष्ठ ४६

निस्तेज और शान्त होने के कारण उपमा कुछ-कुछ उचित तो प्रतीत होती है तथापि यहाँ मुस्लिम-प्रभाव ध्वनित होता है क्योंकि मुस्लिम कवि स्त्री के मुख की उपमा सूर्य से देते हैं, यथा—

जब वह जमाल ए-दिल फरोज, सूरत-ए मेहर-ए नीमरोज।
आप ही हो नजारः सोज, पर्दे में मुँह छुपाये क्यों।

(दीवाने गालिब, गजल ११६

अर्थात् जब कि उनका सौन्दर्य हृदय को प्रकाश देता है और उनका मुख मध्यान्ह के चमकते हुए सूर्य के समान है तथा जो उसकी ओर देखता है वह झुलस जाता है, तो फिर उसे पर्दे में मुँह छिपाने की आवश्यकता ही क्या है।

(१० पद्य) या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
छोड़ कर धधक रही हो कान्त;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।

उस के मुख-मण्डल से जो आभा फूट रही थी वह ऐसी लग रही थी मानो इन्द्रनील मणियों के ज्वालामुखी पर्वत के एक छोटे शिखर से वसंत की मधुर रात्रि में निरन्तर सुन्दर अग्नि-ज्वाला चुपचाप निकल रही हो।

यहाँ नील मेघ-चर्म में इन्द्रनील मणि शृंग की, मुखाभा में अग्नि ज्वाला की और यौवनावस्था में वासन्ती रजनी की सम्भावना की गई है। अग्नि-शिखा को 'कान्त' इसलिए कहा गया है कि उसका मुख अत्यन्त मनोरम था और 'अचेत' इसलिए कि वह आभा यौवन को पाकर स्वयं ही (श्रद्धा के मुख से) अनजाने फूट रही थी। 'माधवी रजनी में' इसलिए जान कर जोड़ा गया है कि श्रद्धा का वह यौवनकाल था।

(१४) उषा की पहली लेखा कांत
माधुरी से भीगी भर मोद;
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।

श्रद्धा के मुख पर मंजुल, मधुर, समुद, समद और सलज्ज मुस्कराहट ऐसे उठ रही थी, जैसे प्रभातकालिक तारों की छाया के मध्य उषा की प्रथम, सुन्दर, मधुर, आनन्दप्रद, मददायक और विनत किरण उठती है।

१०, १४—कामायनी, पृष्ठ ४७

इससे उस रमणी का चित्र भी ध्वनित होता है जो सुरत का रस लेकर प्रिय की गोद मे ही लिपट कर सो गई थी परन्तु उषा की प्रथम किरण के साथ ही मधुर रस में निमग्न अतएव मोद और मद से आप्लावित होती हुई भी लज्जावश शीघ्रता से उठती है।

(१५, १६ पद्य) कुसुम कानन अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार
और पड़ती हो उस पर शुभ्र
नवल मधुराका मन की साध;
हँसी का यह विह्वल प्रतिबिम्ब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध।

इसका वाच्यार्थ यह है कि श्रद्धा के मुख पर हँसी की मद भरी आभा मधुरता की क्रीड़ा के समान निरन्तर पड़ रही थी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो मन्द पवन से प्रेरित मधुर सुरभि पराग के परमाणुओं से शरीर ग्रहणकर अतएव साकार होकर पुष्पित उपवन के एक प्रान्त में खड़ी हो और उस पर मनोरम वासन्ती पूर्णिमा की ज्योत्स्नाधवल नवल रजनी पड़ रही हो।

इसमें हँसी को साकार मध्वाधार सुरभि कहा है तथा मधुरिमा-क्रीड़ा के समान और ज्योत्स्ना-स्नात बतलाया है। इनसे व्यंजित होता है कि श्रद्धा की मुसकराहट अत्यन्त शुभ्र एवं आभापूर्ण थी, श्वासवास से सुरभित थी और अधर-रस से मधुर थी।

(१८) शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल नहीं सका जो कि हिम खण्ड,
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक
आह वैसा ही हूँ पाषंड।

इसमें निर्झर और द्रवित हिमखंड को जलनिधि अंक में (जल की निधि मे) न मिलने से व्यर्थ बतलाकर अपने को भी किसी रमणी की गोद में आश्रय न लेने से व्यर्थ-जीवन ध्वनित किया है। इसमें निर्झर और हिमखण्ड पुल्लिग है। अतः जलनिधि का अर्थ समुद्र नहीं लेना चाहिए। इससे 'जल की निधि' अर्थ ग्राह्य प्रतीत होता है क्योंकि 'निधि स्त्रीलिंग है। 'पुरुष को नारी के अंक में ही सुख मिलता है।

१५, १६, १८ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ४८

इससे यह भी व्यक्त हो रहा है कि मनु भी किसी नारी के आश्रय के बिना केवल दिखावा मात्र है अतः उनके जीवन का कोई साफल्य नहीं।

(१९ पद्य) उसे सुलझाने का अभिमान,
बताता है विस्मृत का मार्ग

इसका भाव यह है कि अपने जीवनकी उलझन को मनु सगर्व जितनी सुलझाने का प्रयत्न करते हैं उतनी ही उन्हें विस्मृत बातें स्मरण हो जाती हैं।

(२१) 'ज्योति का धुँधला सा प्रतिविम्ब' इसमें मनु ने अपने को छायाग्रस्त ज्योति का धुँधला सा प्रतिविम्ब बतला कर यह व्यक्त किया है कि वे किसी समय बड़ी समृद्ध एवं सुविख्यात देव जाति के अवशिष्ट वंशज हैं—प्रतिनिधि हैं।

२२ 'और जड़ता की जीवन राशि' में अपने को जड़ता की जीवन राशि कह कर 'जड़ता' और 'जीवनराशि' में विरोधाभास से यह ध्वनित किया है वे एक ऐसे जड़ पदार्थ समान हैं जिसमें चेतना के अंश विद्यमान हैं।

(२४) कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मन्द बयार।

इसमें केवल 'वसंत के दूत' 'विरस पतझड़', 'घन तिमिर', 'चपला की रेख', 'तपन' और 'शीतल मन्द बयार' उपमानों का उल्लेख किया गया है। इनसे क्रमशः 'आनन्ददायक व्यक्ति', 'नीरस जीवन', 'निराशा', 'आशा', 'सन्ताप' और 'शान्ति' 'उपमेयों' की व्यंजना भी होती है।

(२६ पद्य) 'लगा कहने आगन्तुक व्यक्ति' में श्रद्धा के लिये पुल्लिंग के प्रयोग से मुस्लिम प्रभाव व्यक्त होता है। इसीलिये 'दे रहा हो कोकिल सानन्द' में स्त्रीलिंग उपमान कोकिल के लिये 'दे रहा हो' पुल्लिंग क्रिया का प्रयोग किया है। उर्दू काव्य में प्रियतमा के लिये प्रायः पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग होता है, यथा—

ये कैसे बज्म है और कैसे इसके साकी हैं?
शराब हाथ में है और पिला नहीं सकते। (चकवस्त)
जज्बये इश्क अगर सच है, तो इंशा अल्लाह,
कच्चे धागे में चले आयेंगे सरकार बँधे।

यद्यपि यहाँ 'व्यक्ति' उद्देश्य पुल्लिंग है तथापि कवि का ध्यान श्रद्धा पर ही है।

१९, २० पद्य—कामायनी, पृष्ठ ४९
२१ —(वही) पृष्ठ ५०
२१ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ५०

(२९) 'धरा की यह सिकुड़न भयभीत, आह कैसी है ? क्या है पीर ?' इसमें हिमाद्रि को 'धरा की सिकुड़न' कहकर किसी पीड़ित अतएव चिन्तित व्यक्ति के भाल पर पड़ी सिकुड़न की अभिव्यक्ति की गई है।

(३०) 'कर रहा वंचित कहीं न त्याग, तुम्हें मन में धर सुन्दर वेश ?' इससे दो भाव व्यक्त हो रहे हैं – (१) त्याग का आश्रय लेकर तुम अकर्मण्यता को तो नहीं अपना रहे ? (२) तुमने त्याग इसलिये तो धारण नहीं किया कि तुम भोग्य वस्तु की उपलब्धि में असफल रहे हो ?

(३१) 'काम से झिझक रहे हो आज' इसमें 'काम' का वाच्यार्थ है 'कर्म' परन्तु इससे 'मैथुनेच्छा या इन्द्रिय-विषय' अर्थ की अभिव्यक्ति भी हो रही है क्योंकि श्रद्धा मनु में कामोत्पत्ति कराना चाहती है।

(३२) कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

इससे यह भाव व्यंजित हो रहा है कि सत्-चित्-आनन्द स्वरूप (सच्चिदानन्द) भगवान् भी कर्मपरक हो कर ही विश्व का निर्माण करता है, जिसमें सभी अनुरक्त होते हैं। ईश्वर में 'एकोऽहं बहु स्याम्' की भावना उसकी कर्मप्रियता को व्यक्त करती है और जब ईश्वर भी कर्मलीन है तब तुम कर्म से दूर क्यों भागते हो ?

(३४ पद्य) 'एक परदा यह झीना नील, छिपाये है जिसमें सुखगात'। जिस प्रकार आकाश के झीने नीले परदे में रजनी प्रभात का सुन्दर कान्तिमान् गात छिपाये रहती है, उसी प्रकार दुःख भी अपने श्याम आवरण में सुख का मनोहर रूप छिपाये रखता है।

इसमें उपमेय 'आकाश' का उल्लेख न करके केवल उपमान 'नील परदे' का ही उल्लेख है, परन्तु वह पूर्व पंक्तियों में 'रजनी' एवं 'प्रभात' उपमानों से व्यक्त हो रहा है।

इससे यह भी व्यक्त होता है कि दुख ही सुख का जन्मदाता है।

(३५) 'ईश का वह रहस्य वरदान' इसमें श्रद्धा दुःख को ईश्वर का रहस्यमय वरदान इसलिये कह रही है कि दुःख ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को सन्मार्ग पर

---

२४ —कामायनी, पृष्ठ ५१
३०, ३१ —वही, पृष्ठ ५२
३२ —वही, पृष्ठ ५३
३४, ३५ पद्य—वही, पृष्ठ ५३

चलने की प्रेरणा देती है तथा भगवत्स्मरण के लिए प्रोत्साहित करती है।

(३७) नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुखमणि गण द्युतिमान !

जिस प्रकार मर्यादाबद्ध सागर में विषमताहीनता के कारण ही ज्वार आता रहता है, उसी प्रकार यदि मानव जीवन में सदैव सुख होने से विपत्ति आपतित न हो तो वह सुख ही भार हो जाय और दुख की लहरों में परिवर्तित होकर जीवन को छिन्न भिन्न इस प्रकार कर डाले जिस प्रकार सागर-तल में पड़े कान्तिमान रत्न लहरों में तरंगायित हो अस्त-व्यस्त होते रहते हैं। अतः इससे यह ध्वनित हो रहा है कि जीवन में दुःख-सुख दोनों ही परमावश्यक हैं। महाकवि कालिदास ने कहा भी है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

अर्थात् कौन है वह जिसे एकान्ततः सुख उपलब्ध हुआ है और कौन है वह जिसे एकान्ततः दुख। ये दोनों ही मानव जीवन में क्रम से उसी प्रकार आते जाते रहते हैं, जैसे पहिये की आर कभी ऊपर और कभी नीचे।

(४३ पद्य) 'नित्य नूतनता का आनन्द, किये है परिवर्त्तन में टेक।' अर्थात् परिवर्तन में ही नित्य नवीनता का आनन्द रहा हुआ है। कवि कालिदास ने भी नित्य नवता को ही सुन्दरता का रूप कहा है—

दिने दिने यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः।

इससे यह व्यंजित होता है कि सुख के पश्चात् दुःख और दुःख के पश्चात् सुख जीवन में नवीनता लाने के लिए परमावश्यक है।

(४६) युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद चिन्ह चली गम्भीर;
देव गंधर्व, असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।

---

३७ —कामायनी, पृष्ठ ५४
४३ पद्य—वही, पृष्ठ ५५
४६ —वही, पृष्ठ ५६

इससे यह भाव अभिव्यक्त हो रहा है कि जिस प्रकार व्यक्ति शैल-शिलाओं पर बड़ी सावधानी से दृढ़ता से पग रखता हुआ चलता है उसी प्रकार यह संसार भी विषम अतीत पर अपनी कठोर मुद्रा अंकित करता हुआ चलता है और देव, गंधर्व एवं असुर तथा अन्य सभी लोग बड़ी शीघ्रता से उसका अनुकरण करते जाते है। तात्पर्य यह है कि सृष्टि में एक जाति सत्ता में आती और कालानुसार नष्ट होती, पुनः दूसरी आती और अपना अभिनय कर चली जाती है परन्तु सृष्टि का कार्य किसी के रहने या न रहने से प्रभावित नहीं होता, वह तो नवीनता के साथ चलता ही रहता है।

(४९) 'कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनन्द।' इसका भाव यह है कि संसार में कोई पूर्वकृत कर्मो का फल भोग रहा है तो कोई भोगों में निमग्न हुआ भविष्य के लिये कर्म कमा रहा है। यही कर्म-भोग का क्रम इस जड़ प्रवृत्ति में चेतन आत्मा के आनन्द का मूल कारण है।

यहाँ आनन्द से तात्पर्य सांसारिक सुख है।

(५०) अकेले तुम कैसे असहाय, यजन कर सकते तुच्छ विचार! इसमें यजन से तात्पर्य स्थूल यज्ञ तो है ही साथ ही 'जीवन-यज्ञ' भी ध्वनित हो रहा है अतः 'असहाय' से 'नारी विहीन' भी अर्थ अभिप्रेत है। स्त्री के बिना यज्ञ की सम्पूर्ति भी नही होती।

(५१) 'तुम्हारा सहचर बनकर' में कवि ने श्रद्धा के लिये 'सहचरी' के स्थान पर 'सहचर' का प्रयोग किया है। इससे यहाँ भी मुस्लिम प्रभाव अभिव्यक्त हो रहा है।

(५२) 'सजल संसृति का यह पतवार' यहाँ सजल संसृति से अभिप्राय समुद्र है और इससे यह भाव व्यंजित हो रहा है कि मेरा यह समर्पण इस संसार-सागर में पड़ी तुम्हारी जीवन नौका के निस्तार निमित्त पतवार का काम देगा।

(५३) बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

श्रद्धा मनु से कह रही है कि इस सृष्टि रूप वल्लरी की तुम रहस्यमय जड़ बन जाओ, तभी यह प्रसरित होगी। पुनः पुष्पों के सुन्दर खेल खेलो अर्थात् पुष्प विकसित करो जिससे समस्त संसार सौरभ से भर जाय।

४५, ४६, ४७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ५६
४८, ५० —वही, पृष्ठ ५७

इसमें (वेल, मूल) सुमन एवं सौरभ उपमानों से (सृष्टि और मनु के साथ-साथ) सन्तान और यश उपमेयों की ध्वनि हो रही है। अतः यह भाव व्यक्त हो रहा है कि हे मनु ! तुम इस भावी सृष्टि के मूल कारण बनो। जिसके लिये तुम्हें किसी सहचरी के साथ सन्तानोत्पत्ति के निमित्त काम क्रीड़ाएं करनी होंगी। जिनके परिणाम स्वरूप सृष्टि का कार्य चलेगा और सारा विश्व तुम्हारी सन्तान के यश-सौरभ से भर जायगा।

(५३पद्य) देव-असफलताओं का ध्वंस

प्रचुर उपकरण जुटाकर आज;
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज।

इसका वास्तविक भाव यह है कि देवताओं की असफलता और तत्परिणाम स्वरूप विनाश के इतने प्रभूत कारण विद्यमान हैं कि उनसे शिक्षा लेकर एक अमूल्य नूतन मानव-संस्कृति का निर्माण हो सकता है, जिसमें मन के पवित्र विचारों का ही साम्राज्य होगा।

काम

(१पद्य) मधुमय वसन्त जीवन वन के
वह अंतरिक्ष की लहरों में;
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में।

इसमें 'जीवन' में वन का आरोप करने से तत्सम्बन्धी पदार्थों के वाच्यार्थ की अपेक्षा उनका दूसरा अर्थ भी अभिव्यक्त हो रहा है, यथा—

मधुमय वसन्त	=(१) मादक वसन्त ऋतु	(२) यौवन
अन्तरिक्ष	=(१) आकाश	(२) हृदय
लहर	=(१) वायु-तरंग	(२) भाव-तरंग
रजनी	=(१) हेमन्त की रात	(२) किशोरावस्था

इस प्रकार द्वितीय अर्थ के संकेतित होने से यह भाव होता है कि हे यौवन ! जिस प्रकार मादक वसन्त हेमन्त की अन्तिम पूर्णिमा की रजनी के अन्तिम प्रहर की समाप्ति पर वन-प्रान्त में सहसा ही वायु में छा जाता है उसी प्रकार तुम प्रथम अवस्था के अवसान पर जीवन में अनजाने ही हृदयगत भावों में कब प्रविष्ट हो गये।

---

५३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ५८
१ पद्य—वही, पृष्ठ ६३

(२) क्या तुम्हें देख कर आते यों
मतवाली कोयल बोली थी !
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं !

उपर्युक्त पद्य के आधार पर यहाँ भी द्वितीय अर्थ व्यंजित हो रहा है। कोयल के वाच्यार्थ की अपेक्षा उसका 'हृदय' अर्थ भी अभिप्रेत है। इसी प्रकार नीरवता से तात्पर्य 'हेमन्त का सूनापन' और 'बाल्यकाल्य का प्रेमावेश हीन समय' है। अलसाई से 'संकुचित' के साथ ही 'अनभिव्यक्त' अर्थ भी अभीष्ट है। कलियों के संकेतार्थ की अपेक्षा उसका कोमल भाव व्यंग्यार्थ भी इच्छित है तथा आँखें खोलना से अभिप्राय है 'पंखुरियाँ खोलना' तथा 'उद्‌बुद्ध होना'।

इसके फलस्वरूप इसका भाव इस प्रकार होगा कि जिस प्रकार वसन्त के आने पर मतवाली कोयल बोलने लगती है और पुष्प पत्रहीन हेमन्त के सूनेपन की समाप्ति पर संकुचित कलियाँ अपनी पंखुरियाँ खोल देती हैं उसी प्रकार यौवन के आगमन पर बाल्यकाल की प्रेम-लालसाहीन अवस्था मे दबे हुए भाव उद्‌बुद्ध हो जाते हैं अर्थात् किसी सहचरी की लालसा बलवती हो जाती है। मनु का मानस भी पहले इन भावों से ही तरंगायित था।

(३ पद्य) जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना;
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना।

इसमें भी 'कोरक, 'सुरभि' और 'बिछलन' उपमानों से पूर्व प्रसंगानुसार 'बाला' 'नव यौवन का आकर्षण जन्य प्रभाव' एवं 'हृदय-स्खलन' उपमेयों की व्यंजना हो रही है अतः भाव इस प्रकार होगा कि जिस प्रकार वसन्त जब क्रीड़ावश सहसा ही कलियों में व्याप्त हो जाता है तब पृथ्वी पर अनियन्त्रित भाव से प्रसरित सुगन्ध से सभी का मन उन्मत्त हो जाता है यहाँ तक कि सुरभि से आकृष्ट हो कुछ लोग तो उसे तोड़ना चाहते है उसी प्रकार यौवन भी विनोदवश जब बालिकाओं के हृदय प्रदेश में प्रवेश करता है और जिसके परिणामस्वरूप चतुर्दिक् उसके चांचल्यपूर्ण यौवनोभार का प्रभाव व्याप्त हो जाता है तब किसका हृदय चलायमान नहीं होता—तब कौन दिल थाम कर नहीं रह जाता, यहाँ तक कि बड़े-बड़े संयमी भी पराभूत हो रस-सरोवर में स्नान करने लगते हैं। मनु सोच रहे हैं कि वे भी इस भाव से बचे न थे।

२, ३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ६३

सुरुचिपूर्ण नहीं होते उसी प्रकार यौवन प्राप्त नवल प्रेमी बड़ी आशा से जीवनोल्लास के बड़े मधुर और मनोरम चित्र मानसपटल पर अंकित करते हैं और उनमें कल्पना-प्रसूत सुख-स्वप्नों के रंग भी भरते हैं परन्तु वास्तव में वे निश्चितस्वरूप वाले नहीं होते। प्रेमियों का रंगीन कल्पनाओं का क्षण क्षण में परिवर्तन होता रहता है—कभी वे फूलों के हिंडोले पर झूलना चाहते हैं तो कभी विमान में बैठकर तारों की सैर करना चाहते हैं, कभी पंख लगा कर उपवनों में उड़ना चाहते हैं तो कभी लहरों में लीन हो जाना चाहते हैं, कभी वे समुद्र के उस पार एक पर्णकुटी में रहना चाहते हैं तो कभी चाँद (मून) में सुहागरात (हनीमून) मनाना चाहते हैं। अतः उनके मानस चित्रों का कोई निश्चित रूप नहीं होता—उनकी सृष्टि में सृजन, धारण और परिवर्तन चलता ही रहता है।

(७) लतिका घूँघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध सी मधु धारा,
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।

यहाँ पर भी अप्रस्तुत लतिका आदि से प्रस्तुत युवती आदि की व्यंजना हो रही है अतः दोनों पक्षों में अर्थ इस प्रकार होंगे—

लतिका=लता, युवती। मधुधारा=मकरन्द, मधुररस
घूँघट=पत्र-आंड़, घूँघट। अजिर=धरातल, अंतस्थल
चितवन=झाँकन, दृष्टि। प्लावित करना=भरना, निमग्न करना

भाव यह है कि जिस प्रकार जब लता पत्रों की आड़ से झाँकते हुए पुष्पों की श्वेत पराग को बिखेर कर धरातल को भर देती हैं तो दर्शको को विश्व का वैभव उसके समक्ष तुच्छ प्रतीत होता है उसी प्रकार जब सुर-युवतियाँ अवगुण्ठन में से झांकती हुई आंखों से कान्तिमान् अतएव श्वेत मधुर दृष्टि डालती थीं तो दर्शकों के मन-प्रदेश रस में निमग्न हो जाते थे और उन्हें फिर विश्व का सारा प्रलोभन नगण्य प्रतीत होता था।

इसमें 'दुग्ध सी मधुधारा' से केवल श्वेत पुष्प वाली लताएँ ही अभीष्ट हैं क्योंकि श्वेत पुष्पों का ही पराग प्रायः श्वेत होता है। यह इसलिए भी ग्राह्य है कि युवतियों की चितवन कवि परम्परा के अनुसार श्वेत होती है।

(१० पद्य) 'दुर्बोध न तू ही है इतना' इसमें आकाश के लिए विशेषण रूप में प्रयुक्त 'दुर्बोध' से तात्पर्य 'रहस्यमय' है क्योंकि जिज्ञासु द्रष्टा को ज्ञान नहीं होता कि यह नील आवरण किसने ताना है एवं इसके उस पार क्या है।

---

७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ६४
१० पद्य—वही, पृष्ठ ६५

इसी पद्य में 'आलोक रूप बनता जितना' से अभिप्राय 'यावन्मात्र आकाशीय प्रकाश के कारण सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि' है। ये भी अपने आलोक-चकाचौंध से रहस्य को खुलने नही देते।

(११) 'चल चक्र वरुण का ज्योति-भरा' से 'चन्द्रमा' अर्थ व्यंजित हो रहा है क्योंकि वरुण का चक्र प्रकाशमान और प्रतिक्षण चल माना गया है, चन्द्रमा भी तत्स्वरूप ही है। अतः धर्म-सादृश्य से इनका ग्रहण हो रहा है।

'तारों के फूल बिखरते हैं लुटती है असफलता तेरी' से अभिप्राय है कि हे चन्द्र ! तूने जो किसी अदृष्ट की पूजार्थ फूल ले रक्खे थे, वे खोज के प्रयत्न स्वरूप श्रान्ति से शैथिल्य आने पर तेरे करों से बिखर पड़े है और इस प्रकार अन्वेषण में तेरी असफलता की उद्घोषणा कर रहे हैं।

(१२) नव नील कुञ्ज हैं झीम रहे
कुसुमों की कथा न बन्द हुई;
है अन्तरिक्ष आमोद भरा
हिम कणिका ही मकरंद हुई।

इसका वाच्यार्थ तो यह है कि हरीतिमापूर्ण अतएव श्यामल कुञ्ज वायु से झीम रहे हैं। उनमे पुष्प विकसित हो रहे है, जिनकी गन्ध से चतुर्दिक् वातावरण परिपूर्ण है। पड़ी हुई ओस की बूँदे ही मानो पराग हैं।

इसमे प्रसगवश यह द्वितीयार्थ भी व्यंजित हो रहा है कि आकाश रूप में मानो अगणित कुञ्ज वायु से आन्दोलित हो रहे है। उसमें तारे ही पुष्प हैं, जिनकी आभारूप सुगन्धि से अन्तरिक्ष व्याप्त हो रहा है। धरातल पर जो ओस के बिन्दु पड़े है वे ही उनकी पराग-रज हैं।

(१३ पद्य) इस इंदीवर से गंध भरी
बुनती जाली मधु की धारा;
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहनी सी कारा।

इसमें 'इंदीवर' (नील कमल) से 'आकाश', 'मधु की धारा' से 'सुरभित पवन-तरंगे' अर्थ व्यंजित हो रहे हैं। अतः भाव यह है कि जिस प्रकार नील कमल से निसृत सुरभि चतुर्दिक् व्याप्त हो जाती है और जिससे मुग्ध होकर भ्रमर उसमें विरम जाता है उसी प्रकार इस नील गगन में सुरभित पवन व्याप्त हो रहा है और मेरा (मनु का) मन अनुरक्त हो उसमें उलझ कर आबद्ध हो गया है।

११, १२, १३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ६५

(१५) 'उन नृत्य शिथिल......।' इत्यादि पद्य में अणुओं से उस रमणी का चित्र भी ध्वनित होता है जो किसी रंगस्थली में नृत्य से शिथिल होकर जब कहीं खड़ी हो जाती है या बैठ जाती है अथवा मन्द मन्द चरण रखती है तो समीप के व्यक्तियों पर एक जादू सा हो जाता है और उसके सुरभित निश्वासों से उनके प्राणों को परम शान्ति मिलती है।

(१६) 'आकाश रन्ध्र हैं पूरित से' इसमें तारों को देख कर मनु कहते हैं कि ये आकाश-रन्ध्र है, जो पृष्ठत आगत प्रकाश से आपूरित हैं।

(१९) 'मेरी अक्षय निधि' से तात्पर्य ईश्वरीय जिज्ञासा रूप 'कामना' है।

(२०) 'माधवी निशा की अलसाई' इत्यादि पद्य मे 'तारा' तथा 'धारा' उपमानों से उपर्युक्त उपमेय 'कामना' की प्रसंगवश प्रतीति हो रही है।

'अलसाई अलकों' से अभिप्राय 'मन्दगतिमान् जलद' है।

(२३) व्रीड़ा है यह चंचल कितनी
विभ्रम से घूँघट खींच रही;
छिपने पर स्वयं मृदुल कर से
क्यों मेरी आँखें मीच रही।

यहाँ उपर्युक्त कामना को एक लज्जाशील कामिनी के रूप में चित्रित किया है। तात्पर्य यह है कि मेरी चंचल मनोगत अभिलाषा लज्जित सी होकर सहसा अन्तर्हित होने लगी है। किन्तु छिपे रहने पर भी वह अपने कोमल स्पर्श से ठीक उसी प्रकार मदविह्वल कर रही है, जिस प्रकार कोई नववया बाल मुग्धा नायिका नायक को एकान्त में पाकर लज्जावश सविलास अवगुण्ठन कर लेती है और पीछे छिप कर अपने कोमल करों से उसके नेत्र मूँद लेती है, जिससे उसको परमाल्हाद प्राप्त होता है।

(२७, २८ पद्य) चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं
अवगुंठन आज सँवरता सा;
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा
लहरों में मस्त विचरता सा—
अपना फेनिल फन पटक रहा
मणियों का जाल लुटाता सा;
उन्निद्र दिखाई देता हो
उन्मत्त हुआ कुछ गाता सा।

१५, १६, १९ —कामायनी, पृष्ठ ६६
२०, २३ —वही, पृष्ठ ६७
२७, २८ पद्य—वही, पृष्ठ ६८

इससे निम्न तीन भाव व्यक्त हो रहे हैं, जो आकाश, समुद्र एवं अन्ततोगत्वा ईश्वर से सम्बन्धित है—

(१) यदि यह चाँदनी का आवरण हट जाय तो रात्रि के कारण धूमिल सा प्रकाश दिखाई देने लगे, जिसमें पवन की अनन्त तरंगें उठ रही हैं, तथा जो शेषनाग के समान नीलावरण रूप अपने फण से तारे रूप मणियों को बिखेर रहा है और प्रतिध्वनित शब्दों से जो गा सा रहा है। (न्याय शास्त्र में शब्द को आकाश का गुण माना गया है—'शब्दगुणकमाकाशम्'।)

(२) यदि यह चाँदनी का आवरण हट जाये तो उपर्युक्त आकाश उसी प्रकार दृष्टिगोचर होने लगे जिस प्रकार अनन्त लहरों से भरा अतएव मद से छलकता सा, शेषनाग के समान फण रूप लहरों को पटकता तथा फेन रूप मणियों को लुटाता हुआ और मन्द्रध्वनि से गाता सा रत्नाकार।

(३) यदि यह चाँदनी का अवगुण्ठन हट जाय तो आकाश, पवन, समुद्र एवं तारों के रूप में उस सौन्दर्यमय जीवनधन की झलक मिल जाय क्योंकि ये सब उसी का निखरा रूप है—'सर्वं खल्विद ब्रह्म'।

(३० पद्य) नक्षत्रो, तुम क्या देखोगे
　　　　इस उषा की लाली क्या है ?
　　संकल्प भर रहा है उनमें
　　　　संदेहों की जाली क्या है ?

इसमें 'नक्षत्रों' सम्बोधन सयमी लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है अतः निम्न दो अर्थ होंगे—

(१) हे नक्षत्रो ! तुम्हें क्या पता कि उषा की लालिमा क्या है क्योंकि उषा काल में तुम उसकी आभा देखने के लिए रहते ही नहीं। यह लालिमा अपनी सत्ता के लिए दृढ संकल्प है। तुम विद्यमान नहीं हो अतः यह सोचना कि उषा कोई वस्तु नहीं है, तुम्हारा सन्देह मात्र है और वह व्यर्थ है।

(२) हे संयमियो ! तुम क्या जानो कि जीवन की रंगीनियाँ क्या हैं। किन्तु अब तो सन्देहों का स्थान संकल्पों ने ले लिया है अतः दम और यम मधुर जीवन के रसास्वाद मे बाधा न डालेंगे।

इनमें द्वितीय अर्थ व्यंजित हो रहा है।

(३१) 'चेतना इन्द्रियों की मेरी, मेरी ही हार बनेगी क्या ?' इसका यह भाव है कि मेरी इन्द्रियाँ चेतन है, इन्हे शब्द, रूप, रस; गन्ध और स्पर्श के उपभोग

३०, ३१, पद्य—कामायनी, पृष्ठ ६९

की शक्ति प्राप्त हैं। फिर इस शक्ति के रहते हुए क्या मैं इनका उपभोग न कर सकूँगा ? अर्थात् मैं अवश्य ही उपभोग करूँगा।

(३२) 'मधु लहरों के टकराने से, ध्वनि में है क्या गुंजार भरा' इसमें "लहरों' से 'तरल भाव-तरंगें' अर्थ भी ध्वनित हो रहा है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मेरे (मनु के) समक्ष तट पर टकराती हुई लहरों में एक मधुर संगीत है उसी प्रकार मानस तट पर टकराती हुई मधुर भाव-तरंगों से एक आनन्द की उपलब्धि होती है।

(४२) 'अव्यक्त प्रकृति उन्मीलन के अन्तर में उसकी चाह रही।' इसका यह अभिप्राय है कि नामरुपोपाधि से हीन प्रकृति-तत्व जब सृष्टि के रूप में परिवर्त्तित हुए तो रति ही विकास का मूल कारण बनी।

(४४) उस प्रकृति लता के यौवन में
उस पुष्पवती के माधव का—
मधु हास हुआ था वह पहला
दो रूप मधुर जो ढाल सका।

इसमें "प्रकृति-लता को 'पुष्पवती' कहकर वाच्यार्थ के साथ साथ निम्न द्वितीयार्थ भी ध्वनित किया गया है—

जब कोई बाला यौवन-प्राप्ति पर रजस्वला होती है और उसमें किसी रसिक का वीर्याधान होता है तथा वह वीर्य विकास को प्राप्त होता है, तब सन्तानोत्पत्ति होती है।

प्रकृति-लता में भी जब ईश्वर रूप वसन्त के प्रभाव से' मादकता रूप मधु-हास से पूर्ण विकास रूप पुष्प-विकास हुआ तब नर-नारी रूप दो फल लगे।

(५८ पद्य) 'माया के नीले अंचल में, आलोक बिन्दु सा भरता है'। इसका भाव यह है कि उषा-अरुणिमा और सान्ध्य रक्तिमा अहोरात्र के सन्धिसूचक हैं। सृष्टि की कर्म सिद्धि इन्हीं दो कालों में होती है अतः ये दोनों ही कर्म की माया के नीलाञ्चल में (आकाश में) कर्म के ही आलोक चिन्ह हैं।

(५९) 'प्रारम्भिक वात्या उद्गम में अब प्रगति बन रहा संसृति का।' अर्थात् जिस प्रकार, प्रलय में प्रभंजन विनाश का कारण हुआ उसी प्रकार मैं भी देव-ध्वंस का निमित्त बना और अब जिस प्रकार सृष्टि के आदि में वायु उसके (सृष्टि के) विकास

---

३२ पद्य—कामायनी, पृ० ६९
४२, ४४ —(वही), पृष्ठ ७२
५८ —(वही), ७५
५९ —(वही), ७६

इसमें अप्रस्तुत 'नीलावरण', 'खील' एवं 'चरण' से क्रमशः प्रस्तुत 'आकाश', 'तारे' एवं 'चन्द्रमा' की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः तात्पर्य यह है कि ऐश्वर्य-शालिनी प्रकृति का यह आकाश रूपी नीलावरण शिथिल सा प्रतीत हो रहा है, जिस पर असंख्य तारे मांगलिक लाजाओं के रूप में बिखरे पड़े हैं और प्राची में नवोदित रक्तिम चन्द्रमा बिखरे हुए तारों के साथ ऐसा ज्ञात हो रहा है मानो प्रकृति के लाल कमल के समान चरण के समीप अर्चना के बहुसंख्यक पुष्प पड़े हैं।

इससे समृद्ध अतएव मतवाली एक ऐसी नायिका भी ध्वनित हो रही है, जिसका नीलांचल उन्मादवश शिथिल हो गया है तथा जिस पर मांगलिक खील बिखेरी जा रही हैं एवं जिसके कमल के समान सुन्दर लाल चरणों पर कोई निरन्तर अर्चना के पुष्प बिखेर रहा है।

(४५ पद्य) ज्योत्स्ना-सी निकल आई! पार कर नीहार,
प्रणय विधु है खड़ा नभ में लिये तारक-हार।

इसमें 'नीहार' से 'प्रलय', 'नभ' से 'हृदय' और तारक से 'मधुर भाव' की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः तात्पर्य यह है कि हे श्रद्धे! तुम प्रलय रूप नीहार में से चन्द्रिका के समान बचकर निकल आई हो। तुम्हारे स्वागत के लिए मेरा प्रणय-चन्द्र हृदय रूप आकाश में भाव रूप तारों का हार लिये खड़ा है।

लज्जा

(१ पद्य) कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी;
गोधूलि के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी!

इसमें 'कलिका' और 'दीप-शिखा' से उपमेय 'लज्जा' की प्रतीति हो रही है अतः 'कोमल किसलय' और 'गोधूलि के धूमिल पट' से 'सरस वासनापूर्ण हृदय' की व्यंजना हो रही है। 'किसलय' एवं 'गोधूलि का धूमिल पट' श्यामल होते हैं, उसी प्रकार वासनापूर्ण हृदय भी अन्धकारपूर्ण होने के कारण धुँधला होता है। 'कलिका' और 'दीपशिखा' कोमल और आभापूर्ण होती है, लज्जा भी तद्गुण होती है और जिस प्रकार इन दोनों में संकोच रहता है, उसी प्रकार लज्जा में भी।

(२) मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निरखता ज्यों;
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों।

---

४५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ९२
१, २ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ९७

उपर्युक्त गीति में यहाँ भी 'मन के उन्माद के निखरने' और 'बुलबुले के वैभव के बिखरने' से 'आभापूर्ण लज्जा के प्रसरण करने' का भाव स्पष्ट है, अतएव इसमें 'मंजुल स्वप्नों की विस्मृति' और 'सुरभित लहरों की छाया' से 'वासना की उन्मदावस्था' अभिव्यक्त हो रही है। 'स्वप्नों की विस्मृति' और 'लहरें' जिस प्रकार धूमिल होती हैं, उसी प्रकार वासना भी।

(३) 'अधरों पर उँगली धरे हुए' में लज्जा को अधरों पर उँगली रखे हुए इसलिए कहा गया है कि उसमें उत्साह होते हुए भी मौन की प्रधानता होती है। जब कोई अनुरक्त नायिका दक्षिण नायक से मिलती है और नायक उन्मत्त हो रति की सचेष्ट याचना करता है तो नायिका लज्जावश अधरों पर उँगली रखकर मौन निषेध करती है। इससे वह यह व्यंजित करती है कि मैं तुम्हारी हूँ। तुम जो चाहोगे वही होगा परन्तु देखो, मुँह से न बोलूँगी और न बोलने दूँगी।

'माधव के सरस कुतूहल का, आँखों में पानी भरे हुए।' इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि लज्जा आँखों में वसन्त की सरसता का पानी लिये हुए थी। 'पानी' से तात्पर्य है 'आभा'। लज्जा से भी आँखों में सरसता और मोहकता आ जाता है।

(४ पद्य) 'नीरव निशीथ में लतिका सी' इसमें लज्जा को शान्त रात्रि में लतिका सी कहा गया है। 'लतिका' कोमल होती है, लज्जा भी ऐसे ही होती है तथा जिस प्रकार लतिका पास की वस्तु पर छा जाती है, उसी प्रकार लज्जा भी हृदय पर छा जाती है। 'नीरव निशीथ' से 'वासना पूर्ण हृदय ही' ध्वनित हो रहा है क्योंकि रात्रि के समान ही ऐसा हृदय अन्धकारपूर्ण होता है। 'नीरव' शब्द का प्रयोग इसलिये हुआ है कि लज्जा में मौन की प्रधानता होती है।

(५) किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधु धार ढरे?

इसमे 'फूलों' से 'सुन्दर एवं मृदल भावों' की व्यंजना हो रही है अतः 'इन्द्र-जाल के' पद से 'गुह्य एव स्वप्निल' तथा 'सुहाग कण राग भरे' से 'सौभाग्यसूचक' और मधु धार ढरे' से 'मधुर' विशेषण ध्वनित हो रहे हैं।

लज्जा की व्याप्ति पर नायिका के हृदय मे मौन भाव से अनेक मधुर स्वप्न उठा करते हैं, जो उसके सौभाग्य के सूचक हैं। क्योंकि सौभाग्यवती स्त्रियो के हृदय मे ही ये भाव उद्भूत होते है।

३, ४, ५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ९७

(६) 'पुलकित कदम्ब की माला सी, पहना देती हो अन्तर में।' इसका भाव यह है कि जिस प्रकार कदंब के पुष्पों की माला फुल्ल रहती है और उसके कारण से वक्षस्थल भी फुल्ल सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार लज्जा में भी उद्भूत सुख स्वप्नों से अन्तस्थल पुलकित रहता है।

(७ पद्य) वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरनों से बुना हुआ;
यह अंचल कितना हलका सा
कितने सौरभ से सना हुआ।

इसमें लज्जा के अंचल को 'वरदान सदृश', 'नीली किरनों से बुना हुआ', 'कितना हलका सा' और 'कितने सौरभ से सना हुआ' कहा गया है। 'वरदान सदृश' इसलिए कि लज्जा नारी का एक बहुत बड़ा गुण है क्यों उसके सद्भाव में, वह अनेक अतिचारों से बची रहती है। 'नीली किरणों से बुना हुआ' इसलिए कि नायिका के वासनापूर्ण हृदय में ही लज्जा उत्पन्न होती है। वासना अंधकारपूर्ण होने के कारण श्याम होती है और श्याम और नील कवि परम्परा में अभिन्न रंग है। 'किरणों' से केवल यही भाव व्यक्त हो रहा है कि वासना में लज्जा किरण की भाँति दीप्तिमती होती है। वासना से मुख पर उन्मादजन्य मालिन्य आता है जब कि लज्जा से हृदय की गुदगुदी-जन्य स्मितमय मंजुल आभा।

'कितना हलका सा' से यह ध्वनित हो रहा है कि लज्जा का आवरण झीना होता है। तात्पर्य यह है कि लज्जा में भाव-गोपन तो होता है परन्तु अनुभवों से सहृदय-पारखियों के लिये वह गुह्य नहीं रहता, वे भाँप ही लेते हैं। और 'कितने सौरभ से सना हुआ' इस वाक्यांश से लज्जा की सुरभिमयता व्यक्त हो रही है। लज्जाशील स्त्री की ही कीर्ति सर्वत्र प्रसरित होती है, न कि निर्लज्जा की।

(८) 'परिहास गीत सुन पाती हूँ।' इसका भाव यह है कि सभी मेरा परिहास करते हैं कि तू बल खा कर रह जाती है, कुछ सिमटी-सिमटी सी रहती है, कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं पाती, क्या हो गया है तुझे, अरी! यह तो मुग्धा है, इसे तो प्रेम का तीर लगा है, अजी! बताओ तो सही, कौन है तुम्हारा मन-भावन जिसकी स्मृति में मन ही मन मिश्री की तरह घुल रही हो, इत्यादि। और मैं, मैं असमर्थ सी सुनकर रह जाती हूँ, पर कुछ कह नहीं पाती।

(१० पद्य) मेरे सपनों में कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा;
अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता सा डोल रहा।

६, ७, ८, १० पद्य —कामायनी, पृष्ठ ६८

भाव यह है कि जिस प्रकार कोई सुख-शय्या पर पड़ा प्रभात-समीर से उन्निद्र सा स्वप्न-जाल में उलझा हुआ पक्षियों के कलरव से जाग्रत हो जाता है, उसी प्रकार जब मेरे (श्रद्धा के) हृदय में सुख-स्वप्न जाग्रत हो वासना की उन्मत्त भावनाएं भर रहे थे तथा प्रेम-पवन लहरें मारने लगा था (अग्रिम पद्य में भावपूर्ण होगा)—

(१२) किरनों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलंबन ले चढ़ती;
रस के निर्झर में धँस कर मैं
आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती।

और रस के झरने में बहती हुई मानस-निमग्न आनन्द के शिखर पर आशा रश्मियों की रज्जु का अवलंबन ले चढ़ने का उपक्रम ही कर रही थी कि आह! (लज्जा ने) उस रज्जु को खींच लिया और मैं प्रेमावेश को सफलीभूत न करने के कारण आनन्द से वञ्चित रह गई।

(१४) 'भाषा बन भौंहों की काली, रेखा सी भ्रम में पड़ी रही।' इसका तात्पर्य यह है कि श्रद्धा लज्जावश कुछ न कह सकी, हाँ उसने कटाक्षों से देखा भर अवश्य। इस क्रिया में उसकी काली भौंहे रेख-रश्मि सी प्रतीत हो रही थी मानो, श्रद्धा ने लिखकर यह भाल-पट्ट पर टांग लिया था कि प्रिय! मैं अनुरक्त हूँ परन्तु खेद! कि मनु उसे पढ़ न सके और वह लिखित मौन भाषा केवल काली पंक्ति के रूप में ही रह गई।

(१५) तुम कौन? हृदय की परवशता?

इसमें लज्जा को 'हृदय की परवशता' इसलिए कहा गया है कि इसके वशीभूत नारी अपने हृदयगत भावों को व्यक्त नहीं कर सकती।

स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे
जीवन-वन से हो बीन रही!

इसमें स्वच्छन्द सुमन से तात्पर्य 'उन्मुक्त मधुर भाव' है। लज्जा उन्हें लुप्त कर देती है।

(१६ पद्य) 'मंगल कुंकुम की श्री जिसमें' अर्थात् जिसमें (यौवन में) मांगलिक रोली की शोभा है। भाव यह है कि जिस प्रकार रोली अरुण एवं मांगलिक है उसी प्रकार यौवन भी बदन में अरुणता लाने वाला एवं सुन्दरतम काल होता है।

१२, १४, १५ —कामायनी, पृष्ठ ६६
१६ पद्य —वही, पृष्ठ १००

(२१) 'आंखों के सांचे में आकर, रमणीय रूप बन ढलता सा'। इसका भाव यह है कि जब यौवन आता है तो यौवन-पूर्ण व्यक्ति तो सुन्दर हो ही जाता है, उसकी उन्माद भरी दृष्टि भी सर्वत्र सौन्दर्य पर पड़ने लगती है।

(२३) हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की सी ममता हो,
जागरण प्रात-सा हँसता हो
जिसमें मध्यान्ह निखरता हो।

यौवन वह समय है जिसमें वसन्त का उल्लास और गोधूली का सा ममत्व भरा रहता है। जिसमें जागरण प्रभात की भाँति कान्तिमान तथा मध्यान्ह अपने पूर्ण विकास पर होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वसन्त में पुष्पाभरणों से अलंकृत होकर वनस्पतियाँ एवं शीतल-मन्द-सुगन्ध दाक्षिणात्य पवन एक मादकता छा देते हैं और जिससे सभी प्राणियों के हृदय में उल्लास की हिलोर उठने लगती है, उसी प्रकार यौवन के आगमन पर हृदय उन्माद से भर जाता है और उसमें उत्साह,आवेश, आवेग और आनन्द की लहरें तरंगित हो जाती हैं एवं आलस्य और शैथिल्य प्रयाण कर जाते हैं।

जिस प्रकार गोधूली के समय माताएँ अपनी सन्तान को और स्त्रियाँ अपने दिवा-क्लान्त कान्तों को ममता भरे हृदय से अपने अंक में आश्रय देती हैं, उसी प्रकार प्रेम-निमग्न युवा एवं युवतियाँ भी परस्पर शान्ति और हर्ष का कारण बनते हैं। तथा जिस प्रकार प्रभात समय निशाजनित निद्रा से जागृति उल्लास को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार यौवन भी शैशव की अबोधावस्था के समाप्त होने पर जीवन में मधुर हास्य भर देता है—बार-बार गुदगुदी सी होती है और बात-बात पर स्मित की मधुर रेखाएँ अधरों पर प्रसरित हो जाती हैं। एवं जिस प्रकार सूर्यातप से मध्यान्ह चरम प्रकाश से पूर्ण होता है, उसी प्रकार जीवन भी यौवन के समय शक्ति और उत्साह से परिपूर्ण होता है।

(२४ पद्य) हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से;
उस नवल चन्द्रिका के बिछले
जो मानस की लहरों पर से।

इसमें 'सौन्दर्य की मधुर नवाभिलाषा' के लिए 'नवल चन्द्रिका' का प्रयोग कर यह भाव व्यक्त किया है कि जिस प्रकार प्राची में नवोदित चन्द्र की चाँदनी चकाचौंध पूर्ण हो विश्व पर प्रसृत होती है और मानस (जलाशय) की लहरों पर

२१, २३, २४ —(कामायनी), पृष्ठ १०१

उनके चलायमान होने से रपटती सी प्रतीत होती है, उसी प्रकार यौवनोद्भूत सौन्दर्य की मधुर भावना दृष्टि में एक चकाचौंध उत्पन्न कर देती है—चंचलता ला देती है और मन अस्थिर हो जाता है—रूप रूप पर मुग्ध होने लगता है।

(२५) फूलों की कोमल पंखुड़ियां
बिखरें जिसके अभिनन्दन में ;
मकरन्द मिलाती हों अपना
स्वागत के कुंकुम चन्दन में।

इसमें 'फूलों' से 'हृदय', 'पंखुड़ियों' से 'भाव' और 'मकरंद' से 'अनुराग' की अभिव्यक्ति हो रही है अतः भाव यह होगा कि जिसके (यौवन के) आने पर हृदय में अनेक मधुर भाव उद्‌बुद्ध हो जाते हैं, जिनमें 'अनुराग' मिला रहता है तथा केसर और चन्दन का प्रयोग प्रायः अभीष्ट हो जाता है।

(२८) 'मैं उसी चपल की धात्री हूँ गौरव महिमा हूँ सिखलाती'। इसमें लज्जा को चपल यौवन की धात्री इसलिए कहा है कि जिस प्रकार बालक चंचलतावश कुमार्ग पर चलता है या कोई कुचेष्टा करता है तो धाय उसे रोकती है और अच्छी बातें बताती है उसी प्रकार यौवन-प्रसून चंचलता से जब कोई रमणी असंयत होकर सीमा का उल्लंघन करने लगती है तो लज्जा उसे वर्जित करती है और बड़प्पन का पाठ पढ़ाती है कि ठहरो, इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा जाती रहेगी, तुम हलकी हो जाओगी, धैर्य रखो; बड़प्पन इसी में है कि तुम चंचलता को छोड़कर स्वयं आत्मसमर्पण न करो।

(२९ पद्य) 'बन आवर्जना मूर्त्ति दीना, अपनी अतृप्ति-सी संचित हो'। इसमें लज्जा के कथन का यह अभिप्राय है कि देव-सृष्टि में मैं रति के रूप में थी उस समय देवों में उद्दाम उन्माद से मैं उन्हें विषय-वासना से विरत नहीं कर सकती थी अतएव दीन मूर्त्ति हुई अपनी ही अतृप्त कामना को लिए हुए (अग्रिम पद्य में आशय-पूर्ति हुई है…।)

(३०) अवशिष्ट रह गई अनुभव में
अपनी अतीत असफलता सी ;
लीला विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता सी।

अपनी उसी असफलता के समान अब मैं केवल अनुभव में ही अवशिष्ट रह गई हूँ। अर्थात् लोग केवल अब मेरा अनुभव तो करते हैं परन्तु मैं निपट निष्प्रभाव हूँ। तथा जिस प्रकार प्रिय से रति-संगर में जूझने के पश्चात् नायिका श्रम से चूर-

२५, २८, २९—कामायनी, पृष्ठ १०२
३० —(वही), पृष्ठ १०३

चूर हुई मलिन भाव में निमग्न हो जाती है और अपना उत्साह खो बैठती है, उसी प्रकार मैं भी अब प्रभाव हीन रह गई हूँ।

(३१) 'मतवाली सुन्दरता पग में, नूपुर सी लिपट मनाती हूँ'। इसमें 'मनाती हूँ' से तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जब कोई नर्त्तकी नृत्य करते समय स्वर-ताल के अनुसार नूपुरों से ध्वनि निकालने के लिए नृत्य में मनमाना औद्धत्य त्याग कर संयम रखती है तब उसकी इस क्रिया में नूपुर ही उसे सचेत रखते हैं, उसी प्रकार मैं भी उन्मत्त नायिका को स्वच्छन्द व्यापारों से विरत रखती हूँ।

(३२ पद्य) 'मन की मरोर बन कर जगती'। इसमें लज्जा को 'मन की मरोर' इसलिए कहा गया है कि इससे मन मसूस मसूस कर रह जाता है परन्तु कुछ कर नहीं पाता।

(४०) 'अस्फुट रेखा की सीमा में, आकार कला को देती हो'। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कोई चित्रकार अस्फुट रेखाओं में तूलिका से रंग भर कर कला को साकार बना देता है, उसी प्रकार उन्माद से भरे यौवन में जीवन के सौंदर्य-लक्ष्य अस्पष्ट होते हैं परन्तु लज्जा भावनाओं को संयत कर नारी को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती है।

(४२) 'भुजलता फँसा कर नर तरु से, झूले सी झोंके खाती हूँ'। अर्थात् जिस प्रकार कोई लता यह सोच कर कि मैं वृक्ष को स्वीय पाश में आबद्ध कर लूँगी, उससे लिपटती है परन्तु पुनः लघु भार एवं अशक्ति से लटकती हुई झूले की भाँति झोंके खाती रहती है, उसी प्रकार नारी भी प्रथम पुरुष को आसक्त समझ कर साहस वश उस पर अपना अधिकार जमाने के लिए उसका आलिंगन करती है परन्तु शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर पुरुष की इच्छानुसार चेष्टाएँ करती हैं। श्रद्धा की भी यही अवस्था है। इससे उसका अबलात्व व्यक्त हो रहा है।

(४६) 'देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा'। इसमें 'देवों' से 'सद्भावों' एवं 'दानवों' से 'असद्भावों' की अभिव्यक्ति हो रही है।

(४७) आँसू से भींगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा;
तुम को अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

अर्थात् हे श्रद्धे! तुझे रोते हुए भी हँसते-हँसते पुरुष को आत्म-समर्पण करना होगा।

३१, ३२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १०३
४०, ४२ —(वही), पृष्ठ १०५
४६, ४७ —(वही), पृष्ठ १०६

कर्म

(९ पद्य) पवन वही हिलकोर उठाता
वही तरलता जल में।
वही प्रतिध्वनि अन्तरतम की
छा जाती नभ तल में।

भाव यह है कि मन में जब कोई धारणा जम जाती है तो मनुष्य सदा बुद्धि-बल से उसकी पुष्टि किया करता है। पवन तरंगें, जल-लहरियें एवं आकाश-घटित घटनाएँ सभी उसके उस मत की पुष्टि करने में प्रवीण होती हैं।

(११) 'मेधा के क्रीड़ा-पंजर का, पाला हुआ सुआ है' इसका तात्पर्य यह है कि सत्य को चाहे कितनी ही गहन वस्तु समझो परन्तु वास्तव में यह बुद्धि-विलास ही है। जिस प्रकार पिंजरे में बन्द तोते का आवास उसी में सीमित होता है उसी प्रकार बुद्धि-धारणा के अनुसार जिस सत्य की पुष्टि करती है, वही उसके लिए ध्रुव सत्य है।

(१२) 'किन्तु स्पर्श से तर्क करों के, बनता 'छुई मुई' है।' इसका अभिप्राय यह है कि विभिन्न शब्दों में सत्य की प्रबल कामना है और विभिन्न रूप से उसकी स्थापना की जाती है परन्तु जिस प्रकार लाजवन्ती का पौधा हाथ से छूते ही सिमट जाता है उसी प्रकार प्रतिस्थापित सत्य भी तर्क के समक्ष ठहर नहीं पाता और रूप बदलता सा दृष्टिगोचर होता है।

(३३) 'मिल कर वातावरण बना था, कोई कुत्सित प्राणी' अर्थात् मनु और असुरों की निर्दयतापूर्ण कर्म द्वारा यज्ञ समाप्ति से हुई प्रसन्नता और वध किये गये पशु की दीन वाणी ने मिल कर एक ऐसा घृणास्पद वातावरण बना दिया था, जैसा कि किसी कोढ़ी आदि घृणित प्राणी से चतुर्दिक् बन जाता है।

(३७) 'आज वही पशु मर कर भी क्या, सुख में बाधक होगा?' इसमें 'भी' शब्द से व्यंजित हो रहा है कि 'जीवित अवस्था में तो वह बाधक था ही।'

(५६) 'फैल रही है घनी नीलिमा, अन्तर्दाह परम से' यहां 'घनी नीलिमा' से तात्पर्य 'आकाश' है अतः यह भाव व्यक्त हो रहा है कि यह आकाश नहीं है वरन् सन्तप्त विश्व के हृदय से निकला हुआ धुँआ ही व्याप्त हो गया है।

---

९ पद्य—कामायनी, पृष्ठ ११०
११, १२ —वही, पृष्ठ १११
३३ —वही, पृष्ठ ११६
३७ —वही, पृष्ठ ११७
५६ —वही, पृष्ठ १२१

(६२ पद्य) आह ! वही अपराध, जगत की
दुर्बलता की माया;
धरणी की वर्जित मादकता
संचित तम की छाया ।

वह भूल एक अपराध कहलाता है और वह (संसार की) दुर्बलता के कारण ही होती है। वह जीवन की उन्मत्त मस्ती का परिणाम कही जाती है जो हेय है—वर्ज्य है तथा जो हृदय-स्थल में संचित अज्ञानान्धकार की छाया स्वरूप है—प्रतिबिम्ब है।

लोग भूल करने वाले को मतवाला या अज्ञानी कहते भी हैं।

(७६) 'जीवन का ज्यों ज्वार उठ रहा, हिमकर के हासों में' इसमें 'ज्वार उठ रहा' इस वाक्यांश से 'जीवन' उपमेय द्वारा 'समुद्र' उपमान की और 'हिमकर के हास' उपमान से 'रूप-चन्द्रिका' उपमेय की अभिव्यक्ति हो रही है।

(७९) विगत विचारों के श्रम-सीकर
बने हुए थे मोती;
मुख-मंडल पर करुण कल्पना
उनको रही पिरोती ।

इसका वाच्यार्थ यह है कि श्रद्धा के हृदय में सोने से पूर्व जो भाव थे वे ही मानो इस समय उसके मुख-मण्डल पर स्वेद-बिन्दुओं के रूप में मोती की भाँति झिलमिला रहे थे और मानो किसी करुण कल्पना ने उन्हें वहाँ पिरो दिया था।

इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि श्रद्धा सोने से पूर्व मनु एवं असुरों द्वारा मारे गये पशु की हत्या पर विचार कर रही थी, जिससे उसमें करुणा व्यक्त हो गई थी। उसी करुणा के भार से वे स्वेद-बिन्दु उद्भूत हो गये थे।

(८१) 'अन्धकार मिश्रित प्रकाश का, एक वितान तना था' इसमें प्रस्तुत 'अन्धकार' और 'प्रकाश' के वाच्यार्थ से क्रमशः अप्रस्तुत 'वासनाजनित उन्माद' और 'आनन्द' व्यंग्यार्थ भी व्यक्त हो रहा है।

(८४ पद्य) 'प्रणय-शिला प्रत्यावर्त्तन में, उसको लौटा देती।' भाव यह है जिस प्रकार शिला से टकरा कर जल-प्रवाह लौट जाता है परन्तु पुनः उसी ओर दौड़ कर वहीं चक्कर काटता है उसी प्रकार प्रिय को ठुकरा कर भी प्रणय-विभोर हृदय उसी ओर दौड़ता रहता है और उसी के विचारों में चक्कर काटता रहता है।

---

६२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १२२
७६ —वही, पृष्ठ १२५
७९, ८१ —वही, पृष्ठ १२६
८४ —वही, पृष्ठ १२७

(८५) 'जलदागम मारुत से कम्पित, पल्लव सदृश हथेली।' इसमें श्रद्धा की हथेली को वर्षाकालीन वायु से कम्पित पल्लव के समान कह कर यह व्यक्त किया है कि जिस प्रकार उस वायु से स्पृष्ट हुआ पल्लव कम्पित और आर्द्र हो जाता है उसी प्रकार मनु के हाथ से छूई हुई हथेली में भी 'कम्प' और 'प्रस्वेद' दो सात्विक अनु-भाव व्यक्त हो गये थे।

'जलदागम मारुत' से यह भी अभिव्यक्त हो रहा है कि मनु का कर भी इन दो सात्विक भावों से युक्त था क्योंकि वायु चल होती ही है और वर्षाकालीन होने से आर्द्र भी होती है।

(८८) इस निर्जन में ज्योत्स्ना पुलकित
विधु युत नभ के नीचे;
केवल हम तुम और कौन है?
रहो न आंखें मीचे।

इसमें 'ज्योत्स्ना पुलकित विधु' से मनु श्रद्धा से मानो यह भाव व्यक्त कर रहे हैं कि देखो, एकान्त मे आकाश के नीचे यह चन्द्रमा चाँदनी के आलिंगन से कैसा पुलकित हो रहा है। हम तुम भी तो यहां एकाकी हैं। आओ, इसी प्रकार तुम भी मुझे अपने शीतल आलिंगन में आबद्ध कर लो। इस प्रकार मौन आँखें मींचे न पड़ी रहो। श्रद्धे! देखो तो सही कैसी ज्योत्स्ना-स्नात मधुर माधवी निशा है और तुम विरक्त-सी! आओ! आओ!! हम दो एक होकर प्राण जुड़ा लें।

इससे मनु का 'रोमांच' भी व्यक्त हो रहा है।

(९८) 'मनु! क्या वही तुम्हारी होगी, उज्ज्वल नव मानवता।' इसमें 'उज्ज्वल' से व्यंजित हो रहा है कि वह मानवता उज्ज्वल नही वरन् निकृष्ट होगी।

(१०२ पद्य) 'विश्वमाधुरी जिसके सम्मुख, मुकुर बनी रहती हो।' इसका तात्पय यह है कि जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार विश्व के निखिल सुख में प्रेम-सुख प्रतिभासित होता है। अर्थात् यदि व्यक्ति प्रेम से वंचित हो तो संसार का समस्त सुख उसके लिए तुच्छ हो जाता है।

(११३) सूखें, झड़ें और तब कुचले
सौरभ को पाओगे;
फिर आमोद कहां से मधुमय
वसुधा पर लाओगे।

८५, ८८ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १२७
९८ —वही, पृष्ठ १३०
१०२ —वही, पृष्ठ १३१
११३ —वही, पृष्ठ १३३

इसमें 'सखें, झड़ें' से 'नीरस अतएव अलाभकर होकर मृत्यु को प्राप्त होना' भाव व्यंजित हो रहा है। इसी प्रकार 'सौरभ' से, 'यश', 'आमोद' से 'आनन्द' और 'मधुमय' से 'रसमय' की व्यंजना हो रही है।

इसका संकेतार्थ तो यह है कि यदि कलियाँ विकसित न हों और रस को अपने सम्पुट में ही शुष्क कर झड़ जायें तो उनका सौरभ भी साथ ही नष्ट हो जायगा और फिर मधुर गन्ध इस वसुन्धरा पर उपलब्ध न होगी।

इससे यह अर्थ भी व्यंजित हो रहा है कि हे मनु ! यदि मनुष्य नीरस होकर इतर जनों का हित न करे और इसी प्रकार स्वार्थमय चर्या रखता हुआ निधन को प्राप्त हो जाय तो उसका अपयश हो जायगा और पृथ्वी पर रसमय आनन्द का कारण न बन सकेगा।

(१२२) छल वाणी की वह प्रवंचना
हृदय की शिशुता को
खेल खिलाती, भलवाती जो
उस निर्मल विभुता को।

जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति छलपूर्वक झूठे बहाने लगा कर अपने कार्य निकालने के लिए अबोध शिशुओं से मनचाही बातें करा लेते हैं, उसी प्रकार मनु ने भी प्रियालापों एवं आलिंगन-सुख के प्रलोभन से झूठा आश्वासन देकर श्रद्धा से स्वेच्छित कार्य करा लिया और वह अपने उज्ज्वल हृदय का वैभव भूल कर बालक की भांति आत्म-समर्पण कर बैठी।

(१२९ पद्य) दो काठों की संधि बीच उस
निभृत गुफा में अपने;
अग्नि-शिखा बुझ गई, जागने
पर जैसे सुख सपने।

इसमें 'दो काठों' से 'मनु और श्रद्धा' तथा 'अग्नि-शिखा' से 'कामाग्नि' ध्वनित हो रही है।

ईर्ष्या

(१ पद्य) 'श्रद्धा की अब वह मधुर निशा फैलाती निष्फल अंधकार'। इसमें 'मधुर निशा' से 'उन्माद जन्य सुख' और 'अंधकार' से 'निराशा जनित मलिनता' व्यक्त हो रही है।

---

१२२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १३५
१२९ —वही, पृष्ठ १३६
१ —(वही), पृष्ठ १३९

(५६ पद्य) वासना-भरी उन आँखों पर
आवरण डाल दे कान्तिमान ;
जिसमें सौंदर्य निखर आवे
लतिका में फुल्ल कुसुम समान ।

हे तकली ! तू उन आँखों पर जो वासनापूर्ण हैं, अपने द्वारा बुने वस्त्र से एक ऐसा आवरण डालदे जिससे वे शरीर को न देख सकें और लतिका में खिले पुष्प के समान शरीर में वाह्य सौन्दर्य दीप्तिमान् हो जाय ।

इससे यह भाव ध्वनित हो रहा है कि वस्त्र शरीर के सौंदर्य को बढ़ाता हुआ भी वह आच्छादन है जो वासना पूर्ण आँखों को उन्मादक स्थानों पर पड़ने से रोकता है ।

यदि 'वासना' से तात्पर्य 'दुर्भाव' है तो यह भाव लेना चाहिए कि यह वस्त्र शिशु पर कुदृष्टि-पात को तो रोकेगा ही, जिससे उसका कोई अहित न हो परन्तु नग्न सौन्दर्य में चारचाँद भी लगाएगा ।

(६३) 'मैं सुरभि खोजता भटकूँगा' इसमें 'सुरभि' से 'सुख' की अभिव्यक्ति हो रही है ।

(६४) 'इस पंचभूत की रचना में मैं रमण करूँ बन एक तत्व' । इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सारे चराचर विश्व में एक ईश्वर व्याप्त है, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसार के सुख का मैं ही उपभोग करना चाहता हूँ ।

(६५) 'तुम दानशीलता से अपनी, बन सकल जलद वितरो न विंदु' । इसमें 'दानशीलता' से व्यंजित हो रहा है कि तुम अन्य को बड़ी उदारता से जलद समान प्रेम-दान देती फिरती हो परन्तु मैं अपने सजल मेघ से ही तृषाकुल हूँ । अतः मुझे ऐसा उपेक्षा का दान नहीं चाहिए ।

(७०) 'रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही' ! इन शब्दों से श्रद्धा की विवशता-जन्य कातरता व्यंजित हो रही है ।

इड़ा

(१ पद्य) 'अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर किस
लक्ष्य भेद को शून्य चीर' ।

इसमें 'चिरंतन धनु' से 'ईश्वर' और 'विषम तीर' से 'विविध प्रलोभनों से संसार-प्रपंच में लिप्त प्राणी' ध्वनित हो रहे हैं ।

---

५६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १५१
६३, ६४, ६५ —(वही), पृष्ठ १५३
७० —(वही), पृष्ठ १५४
१ —(वही), पृष्ठ १५७

(२) 'अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भंग,
अपनी समाधि में रहे लीन……' ।

इसमें व्यंग्य है । शैल-शृंगों को वसुधा का अभिमान भंग कर जड़ गौरव के प्रतीक कहा गया है । तात्पर्य यह है कि यद्यपि पृथ्वी जड़ है और वे शृंग भी परन्तु शिखरों को अपनी जडता पर इसलिए अभिमान है कि पृथ्वी उनकी अपेक्षा अधिकाधिक प्राणियों से संकुल होने से सचेत ा सी है जब कि वे अधिकांशतः निस्तब्ध एवं अपने में ही लीन है ।

'उपेक्षा भरे' एवं 'समाधि में सुखी' आदि पदों से शृंगों में मानवीकरण करके 'जड़' से उनकी मूर्खता की व्यजना भी हो रही है । यह व्यग्य बड़ा ही हास्यप्रद है । यथा कोई कहे कि मैं आपसे अधिक मूर्ख हूँ और इसका मुझे अभिमान भी है, तो श्रोता अवश्य ही हँस पड़ेंगे ।

(३) 'कब मुझसे कोई फूल खिला' । इसमें 'फूल खिला' से 'निश्छल हृदय सुखी हुआ' भाव व्यक्त हो रहा है । इसी प्रकार—

'देखा कब मैंने कुसुम-हास' में 'कुसुम हास'से 'अपने हृदय की इच्छापूर्त्ति-जन्य प्रफुल्लता' भाव ध्वनित हो रहा है ।

(४) इस दुखमय जीवन का प्रकाश
नभ नील लता की डालों में उलझा अपने सुख से हताश
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे कांटे बिखरे आस-पास
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थक कर नितांत
उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत
इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलाँच रही
पावस रजनी में जुगनू गण को दौड़ पकड़ता मैं निराश
उन ज्योति-कणों का कर विनाश ।

इसमें 'प्रकाश' से 'आशा', 'नभ नील लता की डालो मे' से 'शून्याकाश में', 'कलियाँ' से 'सुखद वस्तुएं', 'काँटे' से 'दुखद पदार्थ', 'बीहड़ पथ' से 'साहाय्यहीन सांसारिक विषम मार्ग', 'पढ़ रहा' से 'आश्रय लिया', 'अभिनय की छाया नाच रही' से 'क्रीड़ा-व्याप्त है', खोखली शून्यता' से 'निस्सार एवं साहाय्य हीन संसार, 'कुलाँच रही' से 'आतंक जमाये हुए है', 'पावस-रजनी' से 'घनान्धकार पूर्ण जीवन की विषम परिस्थितियाँ' और 'जुगनूगण एवं ज्योति-कणो' से 'क्षणिक सुख' की व्यंजना हो रही है ।

---

२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १५७
३, ४ —(वही), पृष्ठ १५८

तात्पर्य यह है कि सुख से हीन दुखमय इस ,जीवन की आशा इस शून्याकाश में इतस्ततः उलझी सी प्रतीत होती है। जिन्हें मैं सुखद वस्तुएँ समझता था, वे दुखकर निकलीं। इस माहात्म्यहीन संसार के विषम मार्ग पर न जाने मैं कितना चल चुका हूँ। जब कभी क्लान्तिवश कहीं प्राण जुड़ाने आश्रय लेता हूँ तो ये नंगे (निर्लज्ज) हिमवान् (अतएव जड़) पर्वत-शृंग मेरा उपहास सा करते दृष्टिगोचर होते हैं और मैं निर्वासित के समान अशान्तचित्त हुआ अपनी विपन्नावस्था पर आँसू बहाता हूँ। मैं देखता हूँ कि सर्वत्र भाग्य की भीषण क्रीड़ा व्याप्त हो रही है और इस निस्सार संसार में सर्वत्र असफलता ही अपना साम्राज्य जमाये हुए हैं। जब मैं घनान्धकारपूर्ण जीवन की विषम परिस्थितियों में क्षणिक सुखों की ओर दौड़ता हूं तो मेरे हाथ कुछ नहीं लगता वरन् मैं उन सुखों के साधन-भूत पदार्थों के विनाश का कारण बनता हूँ।

(५) जीवन-निशीथ के अन्धकार

तू नील तुहिन जलनिधि बन कर फैला कितना वार-पार
कितनी चेतना की किरनें हैं डूब रहीं वे निर्विकार
कितना मादक तम,निखिल भुवन भर रहा भूमिका में अभंग
तू मूर्त्तिमान हो छिप जाता प्रतिपल के परिवर्त्तन अनंग
ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है तुझमें ज्योति-कला
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुमचूर्ण भला
रे चिर-निवास विश्राम प्राण के मोह जलद छाया उदार
माया रानी के केशभार।

इसमें जीवन को रात्रि कहा गया है अतः 'अंधकार' से 'निराशा' अर्थ ध्वनित हो रहा है। 'नील तुहिन जलनिधि' से उस निराशान्धकार की 'घनीभूतता' व्यंजित हो रही है। तथा इसी प्रकार मादक से 'निष्क्रिय करने वाला','भूमिका' से 'कार्यारंभ' 'मूर्त्तिमान हो' से 'छा कर बाधक बनता हुआ, 'अनंग' से 'गुप्त रूप में ही' और 'केशभार' से 'प्रभाव का विस्तारक' भाव व्यक्त हो रहे हैं।

इस व्यंजना के आधार पर उपर्युक्त पद्य का अर्थ इस प्रकार होगा—

जिस प्रकार रात्रि मे श्याम (रात्रिवश) कुहरा समुद्र की भाँति आकाश में व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार निराशा भी जीवन में इस प्रकार छा जाती है कि न उसकी थाह मिलती है और न पार ही। और जिस प्रकार उस रात्रिगत अंधकार में सूर्य की शुभ्र रश्मियाँ तिरोहित हो जाती हैं, उसी प्रकार निराशांधकार के व्याप्त होते ही आशापूर्ण उदात्त भावनाऐं लुप्त हो जाती हैं।

जिस प्रकार रात्रि का अन्धकार सम्पूर्ण भुवनों में पूर्णतः भर कर प्राणियों को निद्रा में निसंज्ञ कर देता है उसी प्रकार निराशा भी मानव को निष्क्रिय बना

---

५ वद्य—कामायनी, पृष्ठ १५९

देती है क्योंकि निराशा असफलताओं से होती है और जब बार-बार असफलता मिलती है तो मनुष्य प्रयत्न करना त्याग देता है और शनैः शनैः अकर्मण्यता का प्रारंभ हो जाता है। यह निराशा यद्यपि धूमिलमयी हो कर बाधा उपस्थित करती है परन्तु घन-तम में आशा जन्य परिवर्तन में प्रच्छन्न रूप से उसी प्रकार लुप्त भी हो जाती है, जिस प्रकार प्रकाश के आते ही अन्धकार। और जिस प्रकार उस अन्धकार में प्रकाशमयी उषा की आभा प्रस्फुटित होती है, उसी प्रकार निराशा में अज्ञात आशा क्षीण किन्तु आकर्षक रूप दिखाती है। उस समय यह आशा उस निराशा के अस्थिर और तिमिर में ऐसी प्रतीत होती है जैसी सौभाग्यवती स्त्री की श्यामल अलकों के मध्य भाग की सिन्दूर-रेखा।

अन्त में मनु उद्विग्न हो कर कहते हैं कि हे निराशा। तू प्राणों की चिर-विश्राम-दायिनी है क्योंकि संसार-संघर्ष से जर्जरित प्राणी सदा तेरा ही आश्रय लेते हैं। तू ही मोह-जलद की विस्तृत छाया है क्योंकि जब मोह मेघ बन कर जीवनाकाश में व्याप्त होता है तब उसकी कालिमा रूप घटा अत्यधिक घनघनी हो जाती है और जब सन्तप्त मानव उससे अपनी तृषा शान्त नहीं कर पाता तो वह उसकी छाया रूप निराशा का ही आश्रय लेता है।

मनु आगे कहते हैं कि हे निराशा ! तू माया रानी का केश कलाप है। जिस प्रकार केशकलाप रानी के सौन्दर्य को परिवर्धित कर देता है, उसी प्रकार निराशा माया के आकर्षण को और भी बढ़ा देती है। तात्पर्य यह है कि मायावश निराशा-निमग्न हुआ भी मनुष्य माया का त्याग नहीं कर सकता।

(६) जीवन-निशीथ के अंधकार !

तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम-सा दुर्निवार
जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी सी उठती पुकार
यौवन मधुवन की कालिंदी वह रही चूम कर सब दिगन्त
मन-शिशु की क्रीड़ा-नौकाएँ बस दौड़ लगाती हैं अनन्त
कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन! हँसती तुझ में सुन्दर छलना
धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव कलना
इस चिरप्रवास श्यामल पथ में छायी पिक प्राणों की पुकार
नव नील प्रतिध्वनि नभ अपार

इसमें भी पूर्व पद्य की भाँति निराशा को जीवन रूपी रात्रि का अन्ध कहा गया है। अतः मनु का भाव यह है कि जिस प्रकार अग्नि से घुमड़ता हुआ धूम्र अनियंत्रित भाव से चतुर्दिक व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार निराशा का अन्धकार भी विविध कामनाओं की उद्गति के परिणामस्वरूप उद्भूत हो कर हृदय में छा जाता है। और जिस प्रकार अग्नि-प्रसूत धूम में चिनगारियाँ भी रहती हैं,

६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १५६

उसी प्रकार निराशा के अन्धकार में भी असफल इच्छाएं और तज्जन्य वेदनाएं उठती रहती हैं।

यह निराशा यौवन रूपी मधुवन की कालिन्दी है। जिस प्रकार यमुना मधुवन में सभी दिशाओं को चूमती हुई बहती है, उसी प्रकार निराशा भी यौवन में सर्वथा व्याप्त रहती है, जिसमें अल्लड़ मन की चंचल चेष्टा रूप नौकाऐं तीव्रता से गतिशील रहती है। इसमें कवि परम्परा के अनुसार निराशा का वर्ण श्याम होने से उसमें कालिन्दी का आरोप किया गया है और मादकता पूर्ण होने से यौवन में मधुवन का। मन में शिशु का आरोप इसलिए है कि वह यौवन में उसी की भाँति चंचल और चेष्टाशील होता है। क्रीड़ाओं में नौकाओं का आरोप उनकी अस्थिरता व्यक्त कर रहा है।

मनु आगे निराशा के अन्धकार को किसी कोकिलकण्ठी के निर्निमेष नेत्रों का अंजन ही कह कर यह भाव ध्वनित कर रहे है कि जिस प्रकार किसी रमणी के अपलक चक्षुओं में रंजित भ्रामक अंजन अत्यधिक मनमोहक होता है, उसी प्रकार यह भी बड़ा भ्रामक होता है क्योंकि इसमें भी निदान-निहित आशा का आकर्षण मधुर स्पृहा की सृष्टि करता रहता है।

अग्रिम पंक्ति में निराशा को 'धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव कल्पना' कहा गया है। अर्थात् जिस प्रकार कोई कलाकार तूलिका-कृष्ट धुँधली रेखाओं से ही सजीव चञ्चल चित्रों की रचना कर देता है, उसी प्रकार निराशा भी मनुष्य को कुण्ठित कर पुनः उसे प्रेरित करती है कि वह आशा बाँधकर उठे और यही आशा उसके मानस-पटल पर अनेक सुख-स्वप्नों की प्रसूति का कारण बनती है। इसमें धूमिल रेखा की रचना इसलिए कहा गया है कि निराशा वश मन भी धूमिल हो जाता है अतः उसमें विचार-तरंगें स्पष्ट नहीं होतीं।

अन्तिम दो पंक्तियों में 'श्यामल पथ' से 'निराशान्धकार से धूमिल हृदय', 'चिर प्रवास' से 'चिरकाल के लिए कर्त्तव्य से दूरीकृत' और 'नव नील' से 'निराशाकाश' की व्यंजना हो रही है। अतः भाव यह है कि जिस प्रकार कोयल दूर हरियाली में मधुर स्वर करती है और वह स्वर अपार आकाश में प्रतिध्वनित होकर रह जाता है, उसी प्रकार प्राण भी निराशावश कर्त्तव्य से दूरीकृत हृदय में बार बार कर्त्तव्य की पुकार करते हैं परन्तु निराशा के घनान्धकार में वह विलीन हो जाती है।

(७ पद्य) जिसमें सुख-दुख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प सी हो नितान्त
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भाग्य बनी अशान्त

जब मनु घूमते हुए भूकम्प से विध्वस्त सारस्वत प्रदेश में आये और वहाँ एक ध्वंसावशेष नगर को देखा तो वे सोचने लगे कि ध्वस्तकला अतएव ध्वंसावशेष

---

७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १६०

इस नगर के ध्वस्त भवनों की ध्वस्त प्राचीर-पंक्तियों से इसमें रहने वाले प्राणियों के सुख-दुखमय भाग्य को स्पष्टतः पढ़ा जा सकता है। इससे यह निस्सन्देह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी समय में प्राणी बड़े सुखी होंगे परन्तु इस भौतिक वज्राघात से उनकी कैसी दुखद अवस्था हो गई।

'इन ढेरों में दुख भरी कुरुचि' में 'कुरुचि' से 'घृणापूर्ण वीभत्स दृश्य' परिलक्षित हो रहा है।

आती दुलार की हिचकी सी सूने कोनों में कसक भरी।

इसमें 'हिचकी सी' इस उपमा से यह भाव व्यंजित हो रहा है कि इस विपन्न नगर की दुरवस्था को देखकर पीड़ापूर्ण एक करुणा की लहर हृदय में उठती है परन्तु जिस प्रकार हिचकी में श्वास उठ कर रुक जाता है, उसी प्रकार यह भी उठ कर दब जाती है क्योंकि उसका होकर करे भी क्या, किसको पास बुला कर सफल हो!

इन सूखे तरु पर मनोवृत्ति आकाश-बेलि सी रही हरी।

इसमें 'ध्वस्त नगर' में 'सूखे तरु' का आरोप किया गया है। भाव यह है कि जिस प्रकार अमर बेल किसी वृक्ष पर चढ़ कर उसे सुखा देती है परन्तु स्वयं हरी भरी बनी रहती है उसी प्रकार यह नगर भी ध्वस्त हो चुका है परन्तु इसे देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो इसकी महत्त्वाकांक्षाएँ शान्त नहीं हुई हैं।

जीवन-समाधि के खँडहर पर जो जल उठते दीपक अशान्त
फिर बुझ जाते वे स्वयं शान्त।

इन दो पंक्तियों से यह भाव ध्वनित हो रहा है कि जिस प्रकार किसी मृत की समाधि पर जो दीपक जला दिये जाते हैं; वे कालान्तर में स्वयं बुझ जाते हैं, उसी प्रकार इस नगर को देख कर जो दुखद भावनायें मेरे हृदय में जाग्रत हुई थीं, वे अब स्वयं शान्त हो रही हैं।

(९ पद्य) 'मैं स्वयं सतत आराध्य' इत्यादि पद्य से देवों की अहम्मन्यता व्यंजित हो रही है।

प्राणों के सुख-साधन में ही, संलग्न असुर करते सुधार
नियमों में बँधते दुर्निवार।

इससे यह ध्वनित हो रहा है कि असुर यद्यपि स्वीय सुख-साधनों में निमग्न थे तथापि वे अपने से प्रबल शक्तियों से भयभीत रहते थे और इसीलिए वे कठोर नियमों में आबद्ध रह कर अपना सुधार करते थे।

(१०) 'सचमुच मैं हूँ श्रद्धा-विहीन' इसमें श्लेषवश श्रद्धा से दो अर्थ व्यक्त हो रहे हैं—नारी श्रद्धा जिसे अभी मनु त्याग कर आये हैं और श्रद्धा नामक आत्म-भाव।

९, १०पद्य—कामायनी, पृष्ठ १६१

(१४) 'डाली में कंटक संग कुसुम खिलते मिलते भी हैं नवीन' इसमें 'कंटक' से 'दुख' और 'कुसुम' से सुख की अभिव्यक्ति हो रही है।

इसके साथ

'अब विकल प्रवर्त्तन हो ऐसा जो नियति-चक्र का बने यंत्र'

इस पंक्ति को मिलाने से महाकवि कालिदास की निम्न पंक्तियाँ स्मृत हो आती है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।।

अर्थात् संसार में कौन ऐसा है जिसे एकान्ततः दुख ही मिला हो और कौन है वह जिसे सर्वथा सुख ही मिला हो। जीवन में भाग्यवश सुख-दुख का क्रम तो इस प्रकार लगा हुआ है जैसे यान के भ्रमित चक्र के साथ उसकी आरें कभी ऊपर आती हैं तो कभी नीचे।

(१५ पद्य) 'अभिलषित वस्तु तो दूर रहे' इससे 'सुख उपलब्ध न हो' यह भाव व्यंजित हो रहा है क्योंकि इष्ट वस्तु के वियोग का तात्पर्य ही सुखाभाव या दुख है।

हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता।

इसका तात्पर्य है कि अपनी मूर्खता हृदयों पर ऐसा आवरण डाल दे कि जिससे उनमें पारस्परिक भावों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब ही न हो और इस प्रकार वे एक-दूसरे को यथार्थतः समझ न सकें।

(२२) 'थी कर्म निरन्तरता प्रतीक चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान' इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि सरस्वती नदी अपने अनवरत प्रवाह-कार्य में निरत थी और इससे यह निस्सीम ज्ञान प्रबोधित कर रही थी।

(२३) प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग।

इसमें 'कमल' से 'सूर्य', 'पराग' से 'सूर्य-प्रकाश', 'परिमल' से 'प्रकाश-रश्मि', 'श्यामल' से 'हरियाली से पूर्ण वनप्रदेश वासी' और 'कलरव' से 'पक्षियों का शब्द' भाव व्यक्त हो रहे हैं। अतः इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व दिशा में उषा अपनी स्वर्णिम आभा से सुशोभित हुई। कुछ काल पश्चात् उसकी परिधि में ही अपने प्रकाश

---

१४ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १६३
१५ —वही, पृष्ठ १६४
२२ —वही, पृष्ठ १६७
२३ —वही, पृष्ठ १६८

से दीप्त सूर्य उदित हुआ, जिसकी रश्मियों से व्याकुल होकर पक्षी श्याम हरियाली से पूर्ण वनप्रदेश में कलरव करने लगे।

उस रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुन्दर बाला।

इसमें 'फलक' में दो अर्थ व्यक्त हो रहे हैं—(१) पटल और (२) आकाश।

सुषमा का मण्डल सुस्मित-सा बिखराता संसृति पर सुराग।

इसमें 'सुराग' पद से यह उपमा व्यंजित हो रही है कि जिस प्रकार सूर्य उदित होते ही संसार पर अपना अरुण प्रराग बिखेर देता है, उसी प्रकार स्मित वदना वह रमणी अनुराग छिटकाती हुई दृष्टिगोचर हुई।

(२४ पद्य) 'बिखरीं अलकें ज्यों तर्क-जाल' इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि उस बाला की फैली हुई अलकें सहृदय प्रेक्षकों को उसी प्रकार अपने सम्मोहन-पाश में आबद्ध करने में समर्थ थीं, जिस प्रकार कुशलवादी के उत्तरोत्तर दिये गये तर्कों का जाल प्रतिपक्षी को बाँध लेता है। इड़ा (बुद्धि) का तर्क से ही सम्बन्ध है अतएव यह उपमा दी गई है।

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल।

इसमें भाल को 'उज्ज्वलतम विश्व मुकुट सा' कह कर इस उपमा से उसका "विश्व-शिरोमणित्व' व्यक्त किया गया है।

दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग-विराग ढाल।

इसमें दृगों को एक साथ ही अनुराग-विराग ढालने वाला कह कर इस विरोधाभास से यह भाव ध्वनित किया गया है कि वे नेत्र रागियों के लिए राग और विरागियों तथा असफलरागियों के लिए विराग के कारण थे।

वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान।

इस पद्यांश से यह भाव ध्वनित हो रहा है कि उसके वक्षस्थल पर उभरे हुए मंजुल उरोजों को देखकर विश्व के बड़े-बड़े वैज्ञानिक और ज्ञानी भी विज्ञान और ज्ञान को भूलकर खो जाते थे—उनकी सिट्टी गुम हो जाती थी। तात्पर्य यह है कि कि यदि वह किसी महान् वैज्ञानिक या ज्ञानी के समक्ष आ खड़ी हो तो वह मंत्रमुग्ध सा हुआ अपनी निखिल विज्ञान एवं ज्ञान की राशि को उसे समर्पित कर उन कुच-द्वय को ही अपनी साधना का चरम लक्ष्य समझता हुआ उन तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न करेगा और इस प्रकार अपने विज्ञान या ज्ञान से उन्हें अधिक मूल्य एवं मान देगा।

था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये

---

२४ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १६८

इस पंक्ति-द्वय से यह भाव अभिव्यक्त हो रहा है कि उसके एक हाथ का आश्रय लेने से मनुष्य को इस संसार में जीवन-रस के सारभूत कर्म की प्रेरणा मिलती थी तथा दूसरे का अवलम्ब ग्रहण करने से विचारों के अन्तरिक्ष में निर्भयता-पूर्वक विहार करने की प्रवृत्ति होती थी। यह ठीक भी है क्योंकि इडा (बुद्धि) मनुष्य को एक ओर कर्म में प्रवृत्त करती है तो दूसरी ओर तर्कपूर्ण विचारों में।

कर्म करना आनुकूल्य-व्यापार है। और दक्षिण हस्त अनुकूल कहलाता है अतः 'एक हाथ' से 'दक्षिण हाथ' ध्वनित हो रहा है तथा तर्कपूर्ण विचार आत्मतत्व के हितार्थ वाम होते हैं अतः 'दूसरा' से 'वाम हाथ' व्यक्त हो रहा है।

(२५ पद्य) नीरव थी प्राणों की पुकार
मूर्छित जीवन-सर निस्तरंग नीहार घिर रहा था अपार
निस्तब्ध अलस बनकर सोई चलती न रही चंचल बयार
पीता मन मुकुलित कंज आप अपनी मधु बूँदें मधुर मौन।

इसमें मनु के जीवन में सर का आरोप किया गया है अतः निम्न पदों के दो-दो अर्थ व्यक्त हो रहे हैं, उनमें एक वाच्यार्थ और दूसरा व्यंग्यार्थ है—

मूर्छित=निश्चल, निश्चेष्ट
निस्तरंग=तरंगरहित, भावहीन
नीहार=कुहरा, निराशांधकार
बयार=वायु, इच्छा-तरंगें
मधु बूँदें=मकरन्द, मधुर भाव

भावार्थ यह है कि उस परम लावण्यमयी बाला (इड़ा) के सहसा समक्ष आने से पूर्व काम से अभिशप्त मनु के प्राण जड़वत् हो गये थे—वे सब कुछ भूल गये थे। जिस प्रकार किसी जलाशय पर चंचल वायु चलना त्याग कर स्थिर हो जाय तथा उसी के परिणाम स्वरूप वह स्तब्ध होकर तरंगहीन हो जाय और पुनः उस पर निविड़ नीहार घिर आये उसी प्रकार मनु के हृदय में चपल इच्छा-तरंगें अवरुद्ध हो गईं थीं, जिससे वह मूर्छित सा भावहीन हो गया था और उस पर निराशांधकार घिर आया था।

और जिस प्रकार उस परिस्थिति में संकुचित कंज-कली भ्रमरों को प्रवेश न देकर स्वयं ही मकरंद का आस्वाद लेती रहती है, उसी प्रकार उस समय एकाकी मनु मन ही मन श्रद्धा की मधुर स्मृति का आनन्द ले रहे थे।

तन्द्रा के स्वप्न तिरोहित थे बिखरी केवल उजली माया
वह स्पर्श दुलार पुलक से भर बीते युग को उठता पुकार
बीचियाँ नाचतीं बार-बार।

---

२५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १६९

इसमें भी निम्न पदों के दो-दो अर्थ व्यक्त हो रहे हैं—

तंद्रा=नींद, जड़ता

स्वप्न=सपने, धुँधले विचार

उजली माया=उषा की आभा, सुखाशा

वीचियाँ=लहरें, कामनाएँ

तात्पर्य यह है कि इड़ा सुन्दरी को देख कर मनु के मन में उसी प्रकार सुखाशा दौड़ गई और निराशाजन्य भाव लुप्त हो गये, जिस प्रकार उषा की आभा के परिव्याप्त होते ही तन्द्रित व्यक्ति के स्वप्न नष्ट हो जाते हैं। और जिस प्रकार प्रभात-कालीन रश्मियों से जलाशय तरंगित हो जाता है उसी प्रकार इड़ा के मधुर अनुराग भरे दर्शन से मनु का रोम रोम खिल उठा। उन्हें व्यतीत सुखमय समय स्मृत हो आया और मन में अनेक कामनाएँ लहराने लगीं।

(३० पद्य) चल पड़ी देखने यह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला।

इसमें 'मलयाचल की बाला' से 'वायु' की अभिव्यक्ति हो रही है।

लख लाली प्रकृति-कपोलों में गिरता तारादल मतवाला।

इससे इस अप्रस्तुत भाव की व्यंजना भी रही है कि जिस प्रकार मद्यप नायिका के लाल गालों को देखकर उस पर टूट पड़ता है (उसी प्रकार उषाजन्य प्रकृति की लालिमा को देखकर मानो तारे उस ओर गिर रहे थे—डूब रहे थे)।

स्वप्न

(१) संध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती,
मुरझा कर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती!
क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती,।

इसमें 'अरुण' को जलज बना देने से 'केसर' से 'सूर्य की लालिमा', तामरस से 'लाल लाल सूर्य', 'कुँकुम' से वही 'सूर्य की अरुणिमा' की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः भाव इस प्रकार होगा—

अरुण सूर्य पश्चिम जलधि में अस्त हो चुका था। आकाश में अब केवल उसकी अरुणिमा ही अवशिष्ट रह गई थी। सन्ध्या रानी को ज्ञात नहीं था कि उसका प्रिय कहाँ चला गया अतः वह अब तक उसकी लालिमा से ही मनोरंजन कर रही थी। किन्तु रजनी की कालिमा अब प्रसरित होने लगी थी, जिससे उसके क्षितिज-भाल पर अंकित लालिमा रूप रोली मिटने लगी थी। कोकिल इस काल मधुर तान ले रही थी और केवल वही ध्वनि वहाँ कलियों पर गूँज रही थी। परन्तु व्यर्थ क्योंकि

---

३० पद्य—कामायनी, पृष्ठ १७१

१ —वही, पृष्ठ १७५

कलियाँ संकुचित हो रही थीं अतः मँडराने वाले मधुप या तो अन्दर बन्दी हो गये थे या फिर जा चुके थे ; इस प्रकार सुनने वाला वहाँ कोई न था।

इस अन्तर्निहित भाव से यह भाव भी व्यक्त हो रहा है कि मनु चले गये थे और श्रद्धा को यह ज्ञात न था कि वे कहाँ चले गये अतः वह उनकी मधुर स्मृति से मन बहला रही थी। परन्तु अब निराशा जनित मन की मलिनता हृदय की उस सांत्वना को भी मिटा रही थी अतः कोकिल की कूक और कलियों की मँहक उसके लिए व्यर्थ थीं।

(२) कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहां!
वह प्रभात का हीनकला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ'

इस पद्य में कामायनी में 'कुसुम', 'चित्र', 'प्रभात के हीन कला शशि' एवं 'संध्या' का आरोप किया गया है अतः 'मकरंद' से 'जीवन रस', 'रेखाओं', से 'अस्थिपंजर मात्र', 'रंग' से 'संचरित रक्त की लालिमा', 'किरन और 'चाँदनी' से 'शरीर-कान्ति की दमक' और 'रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ' से 'उल्लास-हीनता एवं तज्जनित मलिनता' की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः इसका आशय यह है—

जिस प्रकार वृन्त से झड़ा हुआ परागहीन पुष्प वसुधा पर पड़ा हो, उसी प्रकार जीवन-रस से हीन श्रद्धा पृथ्वी पर पड़ी हुई थी। वह अस्थिपञ्जर मात्र अतएव संचरित रक्त की लालिमा से वंचित एक ऐसे चित्र सी प्रतीत हो रही थी, जो रंगविहीन एवं अभी केवल रेखाओं का ढाँचा मात्र हो।

उस समय उसके शरीर में कोई कान्ति या उद्दीप्ति नहीं थी अतः वह प्रभात के प्रभाव से क्षीणद्युति चन्द्रमा सी दृष्टिगोचर हो रही थी। अथवा वह मलिनतावश ऐसी जान पड़ रही थी, जैसे वह संध्या ही हो, जिसमें न सूर्य का प्रकाश हो, न चन्द्र का और न तारागण का।

(३ पद्य) जहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुर्झाये,
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी न मधुप आये
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये।

इसमें श्रद्धा को 'सरसी', 'जलधर' एवं 'क्षीण स्रोत' कहा गया है अतः 'तामरस' से 'गाल, कान आदि लाल अंग', 'इन्दीवर' से 'नीली आँखें', सित शतदल'

---

२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १७५
३ —(वही), पृष्ठ १७५

(६ पद्य) **संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे,**

इसमें 'श्याम पराग' से 'विरल अन्धकार' की व्यंजना हो रही है।

(७) **नभ में नखत अधिक, सागर में या वुदवुद हैं गिन दोगी ?**

पूर्व पंक्ति में श्रद्धा मन्दाकिनी से पूछ रही है कि जीवन में सुख अधिक है या दुख। अतः इस पंक्ति में 'नखत' दीप्तिमान् होने से 'सुख' के और 'वुदवुद' पवनोद्‌गत जलीय रूपान्तर होने से 'विषादपूर्ण दुख' के परिचायक हैं।

'सिंधु मिलन को जाती हो'—इसमें यह व्यक्त होता है कि समुद्र से मिलने पर तुम उसके वुदवुदों की संख्या बता सकोगी।

(८) '......'जो सुर धनु पट से छनते हैं'।

इसका तात्पर्य यह है कि आकाश-पटल पर अहोरात्र में जो नाना रंग अंकित होते हैं वे इन्द्रधनुप में एकत्र देखे जा सकते हैं।

इस अवकाश पटी पर जितने चित्र बिगड़ते बनते हैं।

इत्यादि समूचे पद्य से यह ध्वनित होता है कि संसार के प्रलोभक सभी पदार्थ कुछ काल तक हमें सुख देते हैं परन्तु अन्ततोगत्वा दुख, वेदना आदि के ही कारण बनते हैं।

(९) '......सजलकुहू में "आज यहाँ' इसमें 'सजल' से तात्पर्य 'तारा रूप अश्रुओं से युक्त' है।

बुझ न जाय वह साँझ-किरन-सी दीप शिखा इस कुटिया की,
शलभ समीप नहीं तो अच्छा, सुखी अकेले जले यहाँ !

इसमें 'दीप-शिखा' से श्रद्धा की 'जीवन-ज्योति' जो प्राणों के स्नेह से बल रही है और 'शलभ' से 'मनु' की अभिव्यक्ति हो रही है।

(१६ पद्य) **वे कुछ दिन जो हँसते आये अन्तरिक्ष अरुणालय से,**
फूलों की भरमार स्वरों का कूजन लिये कुहक बल से;
फैल गयी जब स्मिति की माया, किरन कली क्रीड़ा से,
चिर प्रवास में चले गये वे आने को कह कर छल से।

इसमें 'अन्तरिक्ष' से 'जीवनाकाश', 'अरुणालय' से 'आनन्द-स्रोत', 'हँसते' से 'सुखदायक', 'फूलों' से 'सुख', 'स्वरों के कूजन' से 'उल्लासपूर्ण बातें', 'स्मिति' से 'आनन्द-तरंग' और 'किरन-कली' से 'मनु-श्रद्धा' व्यंजित हो रहे हैं। अतः इसका भाव इस प्रकार है—

जिस प्रकार पूर्वाकाश से सूर्य उदित होकर दिन को दीप्तिमान बना देता है, उसी प्रकार हृदयों में भी संयोग के समय आनन्द के स्रोत फूट पड़े थे। आह ! वे दिन कितने सुन्दर थे।

६, ७, ८, ९ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १७६
१६ —वही, पृष्ठ १७८

वह काल हमारे जीवन का वसन्त था। जिस प्रकार वसन्त में सुमन-भार से वल्लरियों एवं तरु-राजियों की डालिएँ लदी रहती हैं, पिकादि मादक पक्षी सर्वत्र कूजते रहते हैं और सर्वत्र एक जादू सा व्याप्त रहता है, उसी प्रकार हमारे जीवन में भी उस समय सुख ही सुख था, जिसके फलस्वरूप सदा हमारी वाणी से पीयूष ही झड़ता था—मधुरालाप और आनन्द-गीतों में ही समय बीतता था और एक सम्मोहन सा हो गया था।

जिस प्रकार दिनकर की किरण से कली खिल जाती है और एक प्रकाश सा परिव्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार हम दोनों (मनु और श्रद्धा) की विलास-क्रीड़ा से हमारे अधरों पर सदा मधुर हास ही रहता था एवं हृदय में भी उल्लास और शरीर में उत्साह रहता था।

वे दिन छल से आने की कह कर सम्भवतः चिरकाल के लिए उसी प्रकार चले गये, जैसे कोई छलिया लघु अवधि रख कर चिरकाल के लिए चला जाता है।

(१८ पद्य) वन बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु स्वर से।

इसमे 'वन-बालाओं' से 'लताओं' की अभिव्यक्ति हो रही है और 'वेणु' से 'पक्षि-शावकों' की क्योंकि अग्रिम पंक्ति मे 'अपने घर से पुकार सुन कर आने वाले लौट चुके थे' कहा गया है। 'वेणु' से वाच्यार्थ भी लिया जा सकता है क्यों वहाँ वेणु के वृक्ष सम्भवतः हो यद्यपि पार्वतीय प्रदेश में कम ही होते हैं।

रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिंदु कण-कण बरसे।

इसमे 'रजनी' से 'श्रद्धा' व्यंजित हो रही है।

(१९) मानस का स्मृति शतदल खिलता, झरते बिंदु मरंद घने,
मोती कठिन पारदर्शी थे, इनमें कितने चित्र बने।
आँसू सरल तरल विद्युत्कण, नयनालोक विरह तम में,
प्राण पथिक यह संबल लेकर लगा कल्पना-जग रचने।

इसमें 'मानस' श्लिष्ट पद है अतः इसके दो अर्थ हैं—मानसरोवर और मन। 'मरंद-बिंदु' से 'अश्रु-बिन्दु' की ध्वनि निकल रही है। अग्रिम पंक्ति में 'मोती' भी श्लिष्ट पद है, जिसके दो अर्थ हैं—मोती एवं आँसू।

इसका तात्पर्य इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है कि जिस प्रकार मानसरोवर में कमल खिलते हैं और फिर उनसे मकरंद-बिन्दु झड़ते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा के मन में मनु की स्मृति जग गई और उसके नेत्रों टप टप आँसू गिरने लगे। वे आँसू मोती की भाँति कठोर न होकर तरल थे अतएव पारदर्शी थे, जिनमें सुख-दुख के अनेक चित्र स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे।

वे आँसू सीधे-सादे तरल विद्युत्कण ही थे, जिनसे श्रद्धा को विरह के घनांधकार में आलोक मिल रहा था। (आँसुओं के निकल जाने पर दुख से जड़ीभूत

१८, १९ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १७८

हृदय का अंधकार दूर होकर कुछ प्रकाश सा हो भी जाता है।) इन्हीं अश्रुओं का बल लेकर उसके प्राण भविष्य में जीवन-संवहन की कल्पना उसी प्रकार करने लगे जिस प्रकार कोई पथिक अपने पाथेय की परिमिति देख कर भावी यात्रा की कल्पना करता है।

इससे यह व्यंजित होता है कि आँसू सुख-दुख के परिचायक होते हैं और विरह में दुखिया को आश्वासन और संबल प्रदान करते हैं।

(२० पद्य) अरुण जलज के शोण कोण थे नव तुषार के बिंदु भरे,
मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिये बिखरे।
वह अनुराग हँसी दुलार की पंक्ति चली सोने तम में,
वर्षा विरह कुहू में जलते स्मृति के जुगनू डरे-डरे।

इसमें 'अरुण जलज' से 'लाल आँखे', 'तुषार के बिंदु' से 'आँसू', 'मुकुर चूर्ण' से 'चूर्णित हृदय के खण्ड', 'तम में सोने चली' से 'निराशा के अन्धकार में विलीन हो गई' भाव व्यंजित हो रहे हैं। अतः कवि का अभिप्राय यह है—

जिस प्रकार लाल कमल के कोनों में ओस की नूतन बूँदें भर जाती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा की रुदन से लाल आँखों के कोनों में आँसू छलछला आये थे। वे उसके चूर्णित हृदय के मानो खण्ड-खण्ड ही थे, जिनमें उसके तात्कालिक विविध भाव भिन्न भिन्न रूप में प्रतिच्छायित हो रहे थे। विषाद के इस क्षण में उसके प्रेम, हास्य और दुलार की भावनायें हृदय के घनीभूत अन्धकार में विलीन होने लगीं और अब केवल विरह में मनु सम्बन्धी भयमिश्रित स्मृति ही रह रह कर चक्कर काटने लगी जिस प्रकार पावस की मेघाच्छन्न अमा-रजनी में भयभीत से जुगनू रह रहकर चमक जाते है।

(२१) आकांक्षा लहरी दुख-तटिनी पुलिन अंक में थी ढलती।

इसमें 'पुलिन अक' से 'आर्द्र किन्तु अन्दर से तृपित हृदय' की व्यंजना हो रही है।

भरा रह गया आँखों में जल बुझी न वह ज्वाला जलती।

इस विरोधाभास से विरह-वेदना का आधिक्य ध्वनित हो रहा है।

(२२) निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।

इसमें 'निशा तापसी' से 'श्रद्धा' और 'धूनी' से 'उसका संतप्त हृदय' व्यंजित हो रहा है।

(२५ पद्य) मुक्त उदास गगन के उर में छाले बन कर जा झलके।

इसमें 'छाले' से 'तारे' व्यंजित हो रहे है।

२०, २१ २२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १७९
२५, —वही, पृष्ठ १८०

(२७ पद्य) जो कुसुमों के कोमल दल से कभी पवन पर अंकित था,
　　　　आज पपीहा की पुकार वन नभ में खिचती रेख रही।

भाव यह है कि एक वह समय था जब कुसुमों के कोमल दल हिल कर मानो पवन-पटल पर सुख का सन्देश लिखते थे और प्रवहमान पवन-दूत उन मधुर सन्देशों को देता था और अब वह समय है जब वह सुख-स्वर चातक की करुण पुकार 'पी पी' के रूप में नभस्थल में गूँजता है और मैं उसे सुनकर विकल हो जाती हूँ।

(३५) श्रद्धा उस आश्चर्य-लोक में मलय-बालिका सी चलती।

इसमें 'मलय-बालिका सी' से 'पवन की भाँति स्वतन्त्रतापूर्वक' भाव व्यक्त हो रहा है।

(५१) महानील लोहित ज्वाला का नृत्य सभी से उधर परे।

इसमें 'महानील लोहित ज्वाला' का रुद्र से सम्बन्ध अभिव्यक्त हो रहा है।

संघर्ष

(४५, ४६ पद्य) क्षितिज पटी को उठा बढ़ो ब्रह्मांड-विवर में,
　　　　गुंजारित घन-नाद सुनो इस विश्व-कुहर में।
　　　　ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
　　　　तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमें।

इसमें 'क्षितिज पटी' से 'हृदय पर पड़ा हुआ अहं का पर्दा' और 'गुंजारित घन-नाद' से 'कर्म-निरत प्राणियों का कोलाहल' व्यंजित हो रहा है।

'ताल ताल' से 'नियमानुसार', 'लय छूटे' से 'व्यतिक्रम हो' और 'विवादी स्वर छेड़ो' से नियम विरुद्ध कार्य करो' की व्यंजना हो रही है।

इड़ा का तात्पर्य यह है कि हे मनु ! यदि तुम हृदय पर पड़े अहं के पर्दे को हटाकर संसार में प्रवेश करो तो तुम्हें सर्वत्र कर्म-निरत प्राणियों का ही स्वर सुनाई देगा। उस समय तुम्हें यही उचित होगा कि तुम प्रकृति एव समाज के नियमानुसार कार्य करो, जिससे नियम का व्यतिक्रम न हो। ऐसी स्थिति में भूल कर भी नियम-विरुद्ध कार्य करना श्रेयस्कर नहीं।

(५१) मुझे ज्ञान देकर ही जीवित रह सकती हो ?

मनु का भाव यह है कि हे इड़े ! क्या तुम मुझे केवल ज्ञान देती हुई ही जीवित रह सकती हो अर्थात् यह कभी नहीं हो सकता कि तुम एक नारी होते हुए मुझे सदैव ज्ञानोपदेश ही देती रहो। तुम इस प्रकार घुट कर मर जाओगी। मानव-

---

२७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ १८०
३५　—वही,　पृष्ठ १८२
५१　—वही,　पृष्ठ १८६
४५, ४६　—वही,　पृष्ठ १९३
५१　—वही,　पृष्ठ १९४

हृदय, नर का हो या नारी का, प्रेम का आश्रय है। जब मैं प्रेम-विकल हूँ तो तुम में भी प्रेम अवश्य ही जाग्रत होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। नर-नारी के जीवन का साफल्य ही इसी में है कि वह प्रेम करें, अन्यथा वे जीवित नहीं रह सकते।

निर्वेद

(२ पद्य) जीवन में जागरण सत्य है
या सुषुप्ति ही सीमा है,

इसमें 'जागरण' से तात्पर्य 'ज्ञानालोक में कार्य करना' और 'सुषुप्ति' से 'अज्ञानान्धकार में पड़े रहना' है।

(६) नारी का वह हृदय! हृदय में
सुधा सिंधु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जलकर
कंचन-सा जल रंग देता।
मधु पिंगल उस तरल अग्नि में
शीतलता संसृति रचती,
क्षमा और प्रतिशोध! आह रे
दोनों की माया नचती।

इसमें 'नारी का वह हृदय!' इस विस्मयादिबोधक वाक्यांश से यह व्यंजित हो रहा है कि इड़ा का हृदय भी नारी का वही सामान्य हृदय था जिसमें क्षोभ आने पर भी कोमलता नष्ट नहीं होती। अतः 'सुधा-सिंधु' से 'प्रेम-समुद्र', 'वाड़व ज्वलन' से 'क्षोभानल', 'कंचन सा रँग देता' से 'तप्त कर देता है' (कवि-परम्परा में क्रोध का रंग लाल माना गया है क्योंकि क्रोध आने पर मनुष्य की आकृति तमतमा कर अरुण हो जाती है), 'मधु पिंगल' से 'मधुर अनुराग' (अनुराग का रंग भी लाल माना गया है। लाल और पीत में साम्य भी है।) और 'तरल अग्नि' से 'नश्वर क्रोध' की अभिव्यंजना हो रही है अतः भाव यह है—

इड़ा का हृदय भी नारी का हृदय था, जिसमें प्रेम-समुद्र तरंगित हो रहा था। किन्तु कृतघ्न मनु के बलात्कार पर उसे क्षोभ भी आ रहा था, जिससे उसका चेहरा तमतमा जाता था परन्तु शीघ्र अनुराग भरे मनु की विपन्नावस्था एवं क्षत-विक्षत काया को देख कर उसका वह क्षोभ काफूर हो जाता था और पुनः क्षमाजनित शान्ति की लहर दौड़ जाती थी। इस प्रकार उसके मन में क्षमा और प्रतिशोध की भावनाएं रह रह कर जाग्रत हो रही थीं।

---

२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २०५

६ —वही, पृष्ठ २०७

मन की व्यथा जनित निराशा के अन्धकार को नष्ट करके उसमें आशा का प्रकाश कर देती है और जिस प्रकार प्रभात कुसुमों को विकसित कर एक नई मनोहारी आभा छिटका देता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी आनन्द से हृदय-कलि को खिलाकर जीवन में एक नया उत्साह ला देती है।

जहाँ मरु ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती;
उन्हीं जीवन-घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन !

इसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा एक व्यंग्यार्थ भी है। 'मरु ज्वाला' से 'जीवन की नीरसता', 'चातकी' से 'तृषित आत्मा', 'कन' से 'आनन्द-कण', 'जीवन-घाटियों' से 'जीवन की विषम स्थितियों' और 'सरस बरसात' से 'आनन्द की वर्षा करने वाली' अर्थ व्यंजित हो रहे हैं। अतः भाव यह है—

जिस प्रकार जब मरुस्थल में सूर्यातप चरम ताप उत्पन्न कर देता है और चातकी कण-कण जल के लिए तरसती है तब पर्वत-घाटियों से उठती हुई मेघ-मालाएँ वर्षा कर उसे जीवन-दान देती है, उसी प्रकार जब दुखों के ताप से जीवन शुष्क हो जाता है और आत्मा आनन्द के लघु अंश तक की चाहना करने लगती है तब श्रद्धा ही जीवन की विषम-स्थितियों में धैर्य-जनित सुख-चैन की वर्षा कर सान्त्वना प्रदान करती है।

(२४ पद्य) पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी रहा झुक ;
इस झुलसते विश्व दिन को,
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन !

इसमें 'पवन की प्राचीर' से तात्पर्य है 'परिस्थितियों का घेरा', 'झुक (कर) जी रहा' से 'ज्यों त्यों करके दिन काट रहा', 'झुलसते' से 'दुखी होते' और 'कुसुम ऋतु रात' से आशय 'सुख-शान्ति देने वाली' है।

भाव यह है कि जब वसन्त के दिन में वायु दीवार की भाँति स्थिर रह जाती है अर्थात् बहती नहीं है और इस प्रकार प्राणियों के लिए परम दुख का कारण होती है, अथवा तप्त वायु चलती है और प्राणी अपने बन्द आवासों में बैठ जाते हैं और जीवन (जल) भी सूख कर इधर-उधर गड्ढों में शेष रह जाता है तथा समस्त विश्व झुलसने लगता है तब सम्मोहक रात्रि आकर उसे शान्ति देती है, उसी प्रकार परिस्थितियों के घेरे में पड़े हुए व्यक्ति जब दुख से सन्तप्त हो जाते हैं और बड़ी कठिनता से जीवन बिताते हैं, तब श्रद्धा ही उन्हें विश्वास का बल दे कर समभाव में स्थित करती है।

२४ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २१७

चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में ;
मलय मुखर मरंद मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन !

तात्पर्य यह है कि जब घोर निराशा के बादल आँसुओं के सरोवर में प्रतिबिम्बित होते हैं तब मैं उसमें मधुपों से शब्दित, सरस एवं परागपूर्ण कमल के समान खिलती हूँ अर्थात् जब मनुष्य-जीवन में घोर निराशा छा जाती है और आँखों में आँसू लहराने लगते है तब श्रद्धा ही उसे आशा का रस पिला कर उल्लास से उत्फुल्ल करती है।

(पद्य ३०) मै था, सुन्दर कुसुमों की वह
सघन सुनहली छाया थी
मलयानिल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी !

मनु प्रलय से पूर्व अपने सुखमय देव-जीवन का स्मरण करते हुए कहते हैं कि मैं सुन्दर सुमनों की सघन सुनहली छाया में बैठा करता था, उन कुञ्जों में दाक्षिणात्य पवन लहराया करता था और मैं मस्ती में डूबा आनन्द मनाता था।

इससे यह भाव भी व्यंजित हो रहा है कि मैं था और मेरे साथ सुन्दर पुष्पों की सघन सुनहली छाया के समान स्वर्णाभा एवं मृदुलांगी मेरी प्रियतमा थी। हम दोनों पास पास पड़े रहते थे। उसके वासित निश्वासों की तरंग महकती रहती थीं और मैं मन्त्र-मुग्ध सा आनन्द में निमग्न रहता था।

(३१) उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मीचे।

हम रात भर इसी प्रकार उन सुरभित आवासों में पड़े रहते थे। प्रभात हो जाता और उषा सूर्य रूपी लाल प्याला भर लाती, मैं उनींदी आँखों को मीचे-मीचे ही उससे यौवन में उत्साह भरता था।

इससे यह आशय भी ध्वनित हो रहा है कि मैं लेटा रहता था और मेरी लावण्यमयी प्रिया अपनी निश्वास-वास से तृप्त करती हुई अपना अनुराग भरा हृदय-प्याला मुझे समर्पित कर देती थी और मैं रजनी के रत्युत्सव में जागरण के कारण अलसाई आँखों को मीचे मीचे ही यौवनवश आनन्द से उसे पीता रहता था—वक्षस्थल पर लेटी हुई उसे सहलाया करता था।

---

३० पद्य—कामायनी, पृष्ठ २२०
३१ —वही, पृष्ठ २२१

ले मकरंद नया चू पड़ती
शरद प्रात की शेफाली
बिखराती सुख ही,सन्ध्या की
सुन्दर अलके घुँघराली

हम प्रातः और संध्या इसी प्रकार उन्मत्त हुए पडे रहते थे। शरद के प्रभात में हमें सुखी देख कर शेफाली हम पर मकरन्द वर्षा करती थी और संध्या समय श्याम आभा भी हमें सुख ही देती थी।

इससे यह अभिप्राय भी अभिव्यक्त हो रहा है कि शरत्प्रभात के समान हमारे यौवन-प्रभात में मधुर मन रस के स्रोत बहाया करता था और दिन हो या रात सर्वदा सुख का ही अनुभव करता था।

एक तीसरा भाव भी व्यक्त हो रहा है कि प्रातः भी शरत्प्रभात की शेफाली के समान मेरी प्रेयसी मुझ पर अनुराग-कण बिखेरा करती थी और संध्या को भी अपनी सुन्दर घुँघराली अलकावली मे लपेटे मुझे आनन्द-विभोर रखती थी।

(३६ पद्य) 'बुदबुद की माया नचती' इससे 'बुलबुले के समान सुखजनक विचारों की उत्पत्ति और विनाश' यह भाव व्यक्त हो रहा है।

(३७) सन्ध्या अब ले जाती मुझसे
ताराओं की अकथ कथा,

तात्पर्य यह है कि चमकते हुए तारों का रहस्य कोई नहीं जानता परन्तु वास्तव में वह रहस्य तो मेरा था। मेरे सुखमय दिन थे अतः मेरे हृदय में सदैव आनन्दपूर्ण भाव ही उठा करते थे संध्या ने दुख में सुखी होना मुझ से ही सीखा अतः वे तारे नहीं थे वरन् संध्या के विषादपूर्ण हृदय के साकार आनन्द-बिन्दु थे जो इस प्रकार झलकते थे।

(३९) जीवन जलनिधि के तल से जो
मुक्ता थे वे निकल पड़े,

इसमें 'मुक्ता' से अभिप्राय है 'उत्तम गुण'।

(४० पद्य) आशा की आलोक-किरन से
कुछ मानस से ,,ले मेरे,
लघु जलधर का सृजन हुआ था
जिसको शशि लेखा घेरे—
उस पर बिजली की माला-सी

---

३६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २२३
३७ —वही, पृष्ठ २२४
३९ —वही, पृष्ठ २२५
४० पद्य—वही, पृष्ठ २२५

झूम पड़ी तुम प्रभा भरी,
और जलद वह रिमझिम बरसा
मन वनस्थली हुई हरी

इसमें 'मानस' से दो भाव व्यक्त हो रहे हैं—मानसरोवर और मन। 'जलधर' से 'वासनात्मक भाव' और 'शशि लेखा' से 'आनन्द-तरंग' की अभिव्यक्ति हो रही है।

तात्पर्य यह है जिस प्रकार मानसरोवर पर जब सूर्य की रश्मियाँ पड़ती हैं तो मेघ का निर्माण होता है। चन्द्र-लेखा से घिरे हुए उस पर यदि विद्युन्माला लहराये तो रिमझिम वर्षा होने लगती है और पुन: उससे वनस्थली हरी-भरी हो जाती है, उसी प्रकार आशा की किरण द्वारा जब मेरे मन में रसोद्रेक हुआ तो वासनात्मक भाव की उद्भूति हुई, जिससे आनन्द की एक लहर दौड़ गई। उसी समय चंचला की चपल प्रभा के समान तुम आकर मेरे भाव में सम्पृक्त हो गईं, जिससे रस बरसने लगा और हृदयस्थल सरसित हो गया।

दर्शन

(१ पद्य) 'वह चन्द्रहीन थी एक रात' इससे 'अमावस्या की रात्रि' अभिव्यक्त हो रही है।

(५) यह लोचन गोचर सकल लोक,
संसृति के कल्पित हर्ष शोक;
भावोदधि से किरनों के मग,
स्वाती कन से बन भरते जग;
उत्थान पतन भय सतत सजग,
झरने झरते आलिंगित नग;
उलझन की मीठी रोक-टोक,
यह उसकी है नोंक-झोंक।

इसमें 'किरनों' से 'आशा-किरणों', 'झरने' से 'हर्ष शोकमय भाव' और 'नग' से 'हृदय' की अभिव्यक्ति हो रही है। श्रद्धा का तात्पर्य है कि यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत हर्ष और शोक से ओतप्रोत है परन्तु ये हर्ष और शोक मनुष्य की कल्पना से प्रसूत हैं, वास्तविक नहीं। (मन एव मनुष्याणां कारणं सुखदुःखयोः।) ये दोनों भाव, जिस प्रकार सूर्य की किरणें समुद्र से पानी खींच कर स्वाती नक्षत्र में उसे बरसा कर सीप में मोती, चातक की तृषा-शान्ति एवं सर्प के मुख में विषोत्पत्ति

---

१ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २३३
५ —वही, पृष्ठ २३५

का कारण बनती हैं उसी प्रकार आशा के आश्रय से भाव-समुद्र से सम्बल लेकर संसार को अपने प्रभाव से भर देते हैं। और पुनः जिस प्रकार उठते-गिरते सदैव सावधान से झरने पर्वत का आलिंगन करते हुए झरते हैं और मार्ग की बाधाओं को भी सहते हैं, उसी प्रकार ये द्विविध भाव हृदय का स्पर्श करते हुए मनुष्य के विषमता-पूर्ण उत्थान-पतन का कारण बनते हैं।

परन्तु यह संसार और इसकी सुख-दुखमय अवस्थाएँ सभी उस ईश्वर की माया है अर्थात् उसी की मायावश यह सब कुछ हो रहा है।

(६ पद्य) जग, जगता आँखें किए लाल,
सोता ओढ़े तम नींद जाल;
सुरधनु सा अपना रंग बदल,
मृति, संसृति, नति, उन्नति में ढल;
अपनी सुषमा में यह झलमल,
इस पर खिलता झरता उडुदल;
अवकाश सरोवर का मराल,
कितना सुन्दर कितना विशाल।

इसमें 'आँखें लाल किये' से 'उषा की लालिमा लिये' भाव भी व्यक्त हो रहा है और 'उडु' से 'सुख' की अभिव्यक्ति हो रही है।

इस पद्य का भाव यह है कि जिस प्रकार मनुष्य प्रभात में आँखें लाल किये उठता है और रात्रि को चादर ओढ़ के सोता है उसी प्रकार यह संसार भी प्रातः उषा की लालिमा को लिए जगता है और संध्या के अनन्तर तमसावरण को ओढ़ कर सो जाता है। अर्थात् इस संसार में दिन और रात अपना प्रभाव लिये हुए क्रमशः आते जाते रहते हैं।

जिस प्रकार इन्द्रधनुष अनेक रंगों से युक्त होता है, उसी प्रकार यह संसार भी। इसमें नाश, सृजन, अवनति और उन्नति साथ ही साथ घटित होती रहती हैं। इन्द्रधनुष की भाँति यह सुन्दर एवं प्रलोभनपूर्ण होता है। इसका दुखकर पक्ष प्रत्यक्ष होते हुए भी इसका मनोरम रूप सभी पर जादू सा करता है।

इस पर रात्रि को तारे फूलों की भाँति खिलते हैं और प्रातः होते ही झड़ जाते हैं। इसी प्रकार संसार सुख का अनुभव करता है परन्तु क्षणान्तर में ही उसके विनाश का भी।

यह जगत आकाश-सरोवर का हंस है। जिस प्रकार सरोवर में हंस बड़ा चित्ताकर्षक प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह संसार भी बड़ा मनमोहक है। इसका

---

६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २३५

सौन्दर्य-जनित आकर्षण इतना प्रभावपूर्ण है कि कोई प्राणी उसके प्रलोभन से बच नहीं सकता।

(९ पद्य) मुझसे बिछुड़े को अवलम्बन,
देकर, तुमने रक्खा जीवन;

इससे यह भाव व्यंजित हो रहा है कि जो श्रद्धाविहीन हो जाता है, इड़ा (बुद्धि) उसे सम्बल देती है।

(१२) सुख-दुख जीवन में सब सहते,
पर केवल सुख अपना कहते;

इसमें 'पर केवल' से यह भाव व्यंजित हो रहा है कि सभी मनुष्य सुख और दुख दोनों का अनुभव करते हैं परन्तु वे अपना सुख को ही कहते हैं क्योंकि जिनसे वास्तविक सुख होता है वे सभी बातें संसार को रुचिकर होती हैं अतः मनुष्य उन्हें कहने में संकोच नहीं करते। वे जानते हैं कि इससे तो लोग और भी उनके गुणों से परिचित होंगे परन्तु जिन कार्यों से दुख होता है वे सभी निन्द्य होते हैं अतः वे उन्हें निन्दा के भय से नहीं कहते।

(१८) ओ तर्कमयी! तू गिने लहर,
प्रतिबिम्बित तारा पकड़, ठहर;
तू रुक रुक देखे आठ पहर,
वह जड़ता की स्थिति भूल न कर;

श्रद्धा इड़ा का स्वरूप बतला रही है।

इसमें 'लहर' से 'जीवन की विविध विचारमय अवस्थाएँ' और 'तारा' से 'क्षणिक सुख देने वाले क्षण या कार्य' व्यंजित हो रहे हैं।

भाव यह है कि इड़ा (बुद्धि) तर्क-पूर्ण होती है। वह जीवन को धारा के समान समष्टि रूप में ग्रहण न कर केवल खण्ड रूप में उसकी विविध विचारमय अवस्थाओं पर ही विचार करती है। उसमें नश्वर सुखदायक क्षणों या कार्यों को ध्यान में रखती है और इस प्रकार जीवन के क्षण-क्षण में, मोड़-मोड़ पर रुक रुक कर तर्क करती है कि अब क्या करना है, यह होना चाहिए या यह इत्यादि। परन्तु यह जीवन का लक्षण नहीं, यह तो जड़ता है अतएव एक बड़ी भूल है।

---

९ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २३७
१२ —वही, पृष्ठ २३८
१८ —वही, पृष्ठ २४१

(२० पद्य) रह सौम्य ! यहीं, हो सुखद प्रान्त,
विनिमय कर दे कर कर्म कान्त।

श्रद्धा अपने पुत्र से कहती है कि हे सौम्य ! तू यहीं इड़ा के पास रह। तू इस सारस्वत प्रदेश का प्रबन्ध कर। तू श्रद्धा का पुत्र है अतः तुझ में मेरे गुण सहज जन्म-जात हैं। इन गुणों के साथ-साथ जब तू इड़ा (बुद्धि) की सहायता से कार्य करेगा तो अवश्य ही यहाँ के लोग सुखी हो जाएँगे। और इन सुखप्रद कर्मों से इड़ा पर उस उपकार का ऋण भी चुका जायगा, जो इसने तेरे पिता पर किया है।

तात्पर्य यह है कि श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय ही संसार को सुखी बना सकता है।

(३७) गिर जायेगा जो है अलीक,
चलकर मिटती है पड़ी लीक।

श्रद्धा मनु से कह रही है कि जो कुछ असत्य है वह अवश्य एक दिन सन्मार्ग के अनुगमन से नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार मार्ग पर पड़ी लकीर उससे भिन्न चिन्ह मुद्रित करने से मिट जाती है, उसी प्रकार मानव-मन में जो कुवासना घर कर जाती है वह सदाचरण से नष्ट हो जाती है।

(३९) सत्ता का स्पन्दन चला डोल,
आवरण पटल की ग्रन्थि खोल;

यहाँ 'सत्ता' से तात्पर्य 'शिव रूप विराट सत्ता' और 'आवरण' से 'अन्धकार' है।

ज्योत्स्ना सरिता का आलिंगन,

इसमें 'ज्योत्स्ना' से अभिप्राय 'शिव की रजतगौर कान्ति' है।

रहस्य

(१ पद्य) ऊर्ध्व देश उस नील तमस में
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी;
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी।

---

२० पद्य—कामायनी, पृष्ठ २४२
३७ —वही, पृष्ठ २५१
३९ —वही, पृष्ठ २५२
१ —वही, पृष्ठ २५७

इससे पूर्व निर्वेद सर्ग के अन्त में मनु ने शिव का नर्त्तन देखकर श्रद्धा से कहा था कि हे श्रद्धे ! तू मुझे निज सम्बल देकर उन चरणों तक ले चल । तदनुसार श्रद्धा उन्हें ले जा रही है अतः यहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा एक आध्यात्मिक अर्थ भी व्यंजित हो रहा है । उस अर्थ में 'ऊर्ध्व देश' से तात्पर्य 'आध्यात्मिक ऊँचाई', 'नील तमस' से 'अज्ञानांधकार' और 'पथ' से 'प्रचलित' धर्म-मार्ग' है ।

इस प्रकार इसका व्यंग्यार्थ यह होगा कि संसार में व्याप्त अज्ञानांधकार से परे एक आध्यात्मिक जगत है, जो बड़ा दुर्गम है । उसका उज्ज्वल स्वरूप निश्चित है—ध्रुव है । संसार में अनेक धर्म-मार्ग सत्ता में आये और समाप्त हुए परन्तु कोई पूर्णतः उस तक पहुँच कर उसका रहस्य न जा सका और वह आज भी उसी ऊँचाई पर विद्यमान है ।

(३) पवन-वेग प्रतिकूल उधर था
कहता, 'फिर जा अरे बटोही!
किधर चला तू मुझे भेदकर ?
प्राणों के प्रति क्यों निर्मोही ?

इसका भी आध्यात्मिक अर्थ ध्वनित हो रहा है ।

उस मार्ग पर चलते हुए श्रद्धा-पूर्ण मनु मानो एक यात्री हैं । वे बढ़ते जा रहे हैं परन्तु साधनामार्ग की काम, क्रोध, मद, लोभादि-जन्य अनेक विषम बाधाएँ आकर उन्हें बढ़ने से रोकती हैं ।

(४) 'छूने को अम्बर मचली सी'—इत्यादि से भी उस आध्यात्मिक ऊँचाई की विषम बाधाऐं ध्वनित होती है ।

(६, ७, ८ पद्य) 'नीचे जलधर······'
'प्रवहमान थे······' और 'हरियाली······'

इनमें आध्यात्मिक ऊँचाई पर चढ़ने वाले के लिए नीचे के (सांसारिक) प्रलोभन व्यंजित हो रहे हैं ।

(९) लघुतम वे सब जो वसुधा पर
ऊपर महा शून्य का घेरा ;
ऊँचे चढ़ने की रजनी का
यहाँ हुआ जा रहा सवेरा ।

इनसे यह भाव व्यंजित हो रहा है कि श्रद्धा पूर्ण मनु को सभी साँसारिक वस्तुऐं तुच्छ प्रतीत हो रही थी किन्तु अभी उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में महाशून्य का ही आभास

३, ४, पद्य—कामायनी, पृष्ठ २५७
६, ७, ८, ९ —वही, पृष्ठ २५८,

हो रहा था क्योंकि अभी ब्रह्म का आलोक-दर्शन नहीं हुआ था। परन्तु वे उस ऊँचाई तक, चढ़ चुके थे, जहाँ अज्ञानांधकार समाप्त हो कर ज्ञान का उजाला होने वाला था।

(१०, ११) 'कहाँ ले चली'····'और लौट चलो···'

इन दोनों पद्यों से साधना-पथ की दुरूहता के सम्मुख साधक की अशक्तता व्यंजित हो रही है।

(१२) 'मेरे, हां वे सब मेरे थे'—इत्यादि से साधक के मन में रह कर सांसारिक मोह की व्यंजना हो रही है।

(१३) 'वह विश्वास भरी···'इत्यादि पद्य से यह भाव ध्वनित हो रहा है कि जब साधक के मन में मोहोद्भूति होती है तो श्रद्धा उसके विपरीत उसे सम्बल देकर उसे सान्त्वना देती है।

(१४) हम बढ़ दूर निकल आये अब
करने का अवसर न ठिठोली

इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि जब साधक साधना-मार्ग पर बढ़ जाय तो उसे पीछे पैर बढाने का प्रयत्न न करना चाहिए क्योंकि यह तो उसके हास्यास्पद होने का ही कारण होगा।

(१५ पद्य) 'दिशाविकम्पित···'इत्यादि से देश-कालोपरि तथा पृथ्वी से भी ऊपर उठे हुए साधक की शून्यावस्था ध्वनित हो रही है।

(१६) 'निराधार है······'इत्यादि से यह भाव व्यंजित हो रहा है कि यद्यपि कभी-कभी साधक को संसार अपनी ओर आकृष्ट करता है परन्तु श्रद्धा उसे वहीं थामे रहती है।

(१७) 'झाँई लगती जो······' इत्यादि से यह ध्वनित हो रहा है कि आलोक-दर्शन के दीर्घ अभाव के कारण निराशा और कामादि की प्रतिकूल प्रवृत्ति से साधक को रुकना न चाहिए वरन् उन्हें उस मार्ग पर बढ़ावा देने के लिए प्रेरणा ही समझना चाहिए।

(१८) 'श्रांत पक्ष, कर नेत्र बन्द बस'—इत्यादि से यह भाव व्यक्त हो रहा है कि विषमताओं के आने पर समाधि में लीन हो जाना ही साधक के लिए श्रेयस्कर है।

१०, ११, १२, १३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २५९
१४, १५, १६, १७, १८ —वही, पृष्ठ २६०

(१९, २०, २१) 'पवनाओ मत'... 'ऊष्मा का अभिनव...' और 'ऋतुओं के स्तर...' इत्यादि तीनों पद्यों से समाधि में लीन साधक की उस स्थिति की अभिव्यक्ति हो रही है जहाँ वह इस लोक से ऊपर उठ जाता है और उसे ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता तथा जहाँ उसे केवल ज्ञान चक्षुओं से ही अनुभूति होती है। उसे सृष्टि का कोई पदार्थ अनुभूत नहीं होता। अनुभूत होती है तो केवल एक समता-पूर्ण चेतना।

(२२, २३) 'त्रिदिक् विश्व...' और 'मनु ने पूछा...' इत्यादि दोनों पद्यों से यह उट्टंकित हो रहा है कि सिद्धि पथ पर चले हुए मानव को इच्छा अपनी ओर खींचती है, कर्म अपनी ओर और ज्ञान अपनी ओर। इनकी माया से श्रद्धा ही उसे मुक्ति दिलाती है।

(२४ पद्य) 'इस त्रिकोण के मध्यबिन्दु तुम,—इससे यह भाव व्यक्त हो रहा है कि मानव इन तीनों का केन्द्र बिन्दु है। इसकी दृष्टि में ये तीनों ही रहते हैं और भावनानुसार इसे अपनी ओर खींचते रहते हैं।

(२५) 'यह देखो रागारुण...' इत्यादि से इच्छालोक की मनोहारिता और सूक्ष्मता व्यजित हो रही है।

इच्छाओं के लोक में भ्रमण करने वाले को बड़ा आनन्द आता है। यही कल्पना-लोक कहलाता है।

(२६) शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ;
चारों ओर नृत्य करती ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ।

इसमें 'पुतलियाँ' से 'इन्द्रिय-शक्तियाँ' अर्थ ध्वनित हो रहा है। तात्पर्य यह है कि इच्छालोक में मनुष्य इन्द्रिय-विषयों में लिप्त रहता है।

इन्द्रियाँ पाँच है—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और त्वक्। इनके क्रमशः शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श विषय है। ये विषय संख्या में २४ होते है, जो इस प्रकार है—

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—जीव शब्द, शब्द अजीव और जीवाजीव शब्द। जीव शब्द वह शब्द है जो प्राणियों के मुख से निकलता है। अजीव शब्द वह है जो

१९, २०, २१, २२, २३ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६१
२४, २५, २६ —वही पृष्ठ २६२

जड़ पदार्थों से होता है जैसे घड़ी का शब्द, इंजन का शब्द आदि। जीवाजीव शब्द वह ध्वनि है जो जड़ और चेतन दोनों के संयोग से होता है, यथा वंशी का शब्द।

रूप मूलतः पाँच प्रकार के होते हैं—कृष्ण, पीत, नील, लाल और शुक्ल। शेष रंग इन्हीं के सम्मिश्रण से बनते हैं।

गन्ध द्विविध होती है—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

रस षट्संख्यक होता है—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय।

और स्पर्श आठ प्रकार का है—लघु, गुरु, शीतल, तप्त, कठोर, कोमल, विषम और चिक्कण।

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और त्वगिन्द्रिय इन पञ्चेन्द्रियों से क्रमशः उपर्युक्त विषय विषयीभूत होते हैं। उनमें भी अपनी अपनी रुचि के अनुसार प्राणी भिन्न-भिन्न विषयों में आनन्द लेते हैं, यथा किसी को मधुर रस अभिप्रेत है तो किसी को तीक्ष्ण, किसी को सुगन्ध अच्छी लगती है तो किसी को दुर्गन्ध तथा इसी प्रकार कोई पीत वर्ण का इच्छुक है तो कोई शुक्ल का और कोई शीतल स्पर्श चाहता है तो कोई तप्त।

इस संसार में स्थूल पदार्थ इन्हीं इन्द्रियों से इन्हीं विषयों के रूप में प्रत्यक्ष होते हैं अतः सर्वत्र इन्हीं की क्रीड़ा-लीला दृष्टिगोचर होती है क्योंकि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष कर पुनः रुचि के अनुसार प्राणी उनकी समीपता एवं उपलब्धि का प्रयत्न करता है। संसार में जो कुछ स्थूल रूप में दीख रहा है, वह इसी का परिणाम है।

(२७) इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में;
इठलातीं सोतीं जगतीं वे
अपनी भाव भरी माया में।

इसमें 'कुसुमाकर' से 'यौवन', 'कानन' से 'मन' और 'अरुण पराग' से 'अनुराग पूर्ण भाव' अर्थ भी ध्वनित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वसन्त के आगमन पर वन में अरुण पराग का अवलम्बन लेकर तितलियाँ अपनी मस्ती में निमग्न हुई इतरा-इतरा कर बैठती-उठती, सोती-जागती हैं, उसी प्रकार हृदय में जब यौवन प्रवेश करता है तो इन्द्रियाँ मद से छक कर उन्मादिनी हो जाती हैं और अनुराग पूर्ण भावों की प्रेरणा लेकर वे स्व-स्व विषयों का उपभोग करती हैं। उस समय एक जादू सा होता है, जिससे ये विवेकहीन हुई अपने विषयों का अन्धानुकरण करती हैं।

---

२७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६२

(२८ पद्य) 'यह [illegible] छवि इनकी'—इत्यादि से श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्दात्मक स्वर का संसार के मन पर जो तीव्र प्रभाव पड़ता है, उसकी व्यंजना हो रही है।

'स्वर' शब्द से यहाँ आकाश का 'शब्दगुणत्व' ध्वनित हो रहा है—'शब्दगुणमाकाशम्'।

(२९) 'आलिंगन सी मधुर प्रेरणा'—इत्यादि से स्पर्शेन्द्रिय का प्रभाव व्यक्त किया गया है। इसमें प्रेम-भाव के स्पर्श-भाव से [illegible] की ध्वनि हो रही है।

सिहरन प्रायः वायु से होती है अतः 'सिहरन' से यहाँ वायु का 'स्पर्शगुणत्व' अभिव्यक्त हो रहा है—'स्पर्शविशेषवान् वायुः'।

(३०) 'यह जीवन की मध्य भूमि है'—इत्यादि से यह भाव ध्वनित हो रहा है कि रसनेन्द्रिय बड़ी प्रबल है। यह आस्वाद्य को अपने वश में रखती है। उसकी जिह्वा रुचि के अनुसार रसास्वाद के लिए सदैव लालायित रहती है इसीलिए जीवन की सारी इच्छाओं का यही केन्द्र रहता है। अन्य चाहे इन्द्रियाँ शिथिल एवं वृद्धावस्था में अपने विषयों से भले ही विरत हों परन्तु रसना की तीव्रता उस समय भी रहती ही है।

धारा जल-तत्व की होती है अतः 'धारा' से जल का 'रसगुणत्व' प्रतीत हो रहा है।

(३१) 'जिसके तट पर विद्युत कण में'—इत्यादि से चक्षुरिन्द्रिय के विषय रूप का संसार में प्राबल्य बतलाया गया है। चक्षु सौन्दर्य का सदैव उपभोग करने के लिए चञ्चल रहते हैं और यौवन में तो वे चपल मीन की भाँति चलायमान ही रहते हैं।

विद्युत् कण अग्नि से सम्बन्ध रखते हैं अतः 'विद्युत् कण' से यहाँ अग्नि का 'रूपगुणत्व' उट्टंकित हो रहा है।

(३२) 'सुमन सकुलित भूमि रंध्र से'—इत्यादि से घ्राणेन्द्रिय के विषय गन्ध का इस लोक में माहात्म्य व्यक्त किया गया है।

'भूमि' शब्द से यहाँ पृथ्वी का 'गन्धगुणत्व' व्यक्त हो रहा है—'गन्धवती पृथ्वी'।

(३३ पद्य) जिस आलोक बिन्दु को घेरे,
यह बैठी मुसक्याती माया।

२८, २९, ३०, ३१, ३२ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६३
३३ —वही, पृष्ठ २६४

इसमें 'मुसक्याती' से तात्पर्य 'सबको आकृष्ट करती' है। भाव यह है कि यहाँ इच्छालोक में माया शासन करती है।

(३४) भाव चक्र यह चला रही है
इच्छा की रथ-नाभि घूमती;
नव रस भरी अराएँ अविरल
चक्रवाल को चकित चूमतीं।

भाव यह है कि जिस प्रकार वाहक के चलाने पर रथ चक्रवाल से जुड़ी हुई आरों से युक्त धुरी पर घूमता है, उसी प्रकार इच्छालोक में माया (विषयों की सम्मोहक शक्ति) मनुष्य के हृदय-गत भावों को नव रसों से सम्बन्धित इच्छाओं के द्वारा प्रेरित या उद्दीप्त करती है।

साहित्य-संसार में यह रथ और आरों की उपमा सर्वप्रथम वेद में आई है, यथा—'रथनाभाविवाराः'।

साहित्य शास्त्रानुसार रस नौ होते हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। और इनके क्रमशः ये नौ स्थायी भाव होते हैं—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद।

सर्वप्रथम हृदय में विविध रस सम्बन्धी संचरणशील इच्छाएँ ही उद्भूत होती हैं। कालान्तर में ये ही इच्छाएँ भिन्न भिन्न भावों को उत्तेजित करती हैं।

'चकित' शब्द से रस की अनिर्वचनीयता ध्वनित हो रही है।

(३५) यहाँ मनोमय विश्व कर रहा
रागारुण चेतन उपासना;

इसमें 'मनोमय विश्व' से तात्पर्य 'शरीर-संस्थान के पञ्च कोषों में से तृतीय कोष' है और 'रागारुण चेतन' से प्रयोजन 'प्रेममय भावना' है। वेदान्त के अनुसार शरीर पञ्च कोषों से निर्मित एवं युक्त है। वे इस प्रकार हैं—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष। अन्नमयकोष से तात्पर्य है अन्न से बनने वाले रस, रक्त एवं विभिन्न धातुएँ आदि। प्राणमय कोष से अभिप्राय शरीर में प्राण, अपान, उदान, समान और सव्यान इन पञ्च वायुओं का व्यापार है। मनोमय कोष मन, अहंकार और कर्मेन्द्रियों के समष्टि-व्यापार को कहते हैं। विज्ञानमय कोष बुद्धि और सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों को कहते हैं और आनन्दमय कोष शरीर में आत्मानन्द की अनुभूति का नाम है।

३४, ३५ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६४

इनमें से तृतीय मनोमय विश्व अर्थात् मनुष्य का मन इस इच्छालोक में अनुरागपूर्ण भावनाओं में सदैव निमग्न रहता है और इन्द्रियाँ उनका अनुसरण करती रहती हैं।

(३६ पद्य) 'ये अशरीरी रूप……' इत्यादि में 'अशरीरी रूप अप्सरियों' से "इन्द्रियागोचर इच्छाएँ' व्यंजित हो रही हैं।

इच्छालोक में केवल मानस में इच्छाएँ तरंगित होती रहती हैं।

(३७) 'भाव भूमिका इसी लोक की'—इत्यादि का भाव यह है कि इस लोक में मनुष्य के विविध सदसत् भाव ही उसके पुण्य और पाप के उत्पादक हैं। पुनः उन्हीं पुण्य-पाप के परिणामस्वरूप मनुष्य का स्वभाव निर्मित होता है।

(३८) नियममयी उलझन लतिका का
भाव विटपि से आकर मिलना;
जीवन वन की बनी समस्या
आशा नभ कुसुमों का खिलना।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वन में वृक्षों से लताएँ उलझ जाती हैं तो मार्ग में एक समस्या खड़ी हो जाती है उसी प्रकार जब भावों के साथ धार्मिक या सामाजिक आदि नियम टकराते है तो जीवन में एक समस्या आ खड़ी होती है कि 'किस प्रकार भावो को लक्ष्य तक पहुँचाया जाय क्योंकि अनेक बार हम चाहते तो कुछ है और नियम हमे रोकते हैं। ऐसी स्थिति में इच्छाओं की पूर्ति आकाश-कुसुम के समान असम्भव होती है।

इच्छालोक में ऐसा ही होता रहता है।

(३९ पद्य) चिर-वसंत का यह उद्गम है
पतझर होता एक ओर है;
अमृत हलाहल यहाँ मिले हैं
सुख दुख बँधते एक डोर हैं।

यहाँ 'चिर वसंत' से 'दीर्घ काल तक आमोद-प्रमोद', 'पतझर' से 'निर्धनता', 'अमृत' से 'यश, भलाई आदि' और 'हलाहल' से 'अपयश, बुराई आदि' अर्थ व्यंजित हो रहे है। अतः भाव यह है—

इस इच्छालोक में एक ओर कुछ लोग सतत आमोद-प्रमोद में लीन रहते हैं, तो दूसरी ओर कुछ निर्धनता वश अभाव-ग्रस्त रहते है। यहाँ यश-अपयश, बुराई-

३६, ३७, ३०, ३१, [कामा]यनी, पृष्ठ २६४
३८, ३९ वही, पृष्ठ २६५

भलाई साथ साथ मिलती हैं तथा सुख-दुख भी एक डोर में बँधे हुए हैं। इन द्वन्द्वों की लीला नित्य चलती रहती है।

(४१) 'मनु यह श्यामल कर्म लोक है'—इत्यादि में कर्म लोक को 'अंधकार सा धुँधला' इसलिए कहा गया है कि भले-बुरे कर्म की परिभाषा नहीं की जा सकती क्योंकि देश-कालानुसार इसमें बड़ा अन्तर पड़ता रहता है। एक देश या जाति में स्त्री को पर पुरुष को देखना भी पाप है परन्तु दूसरे देश या जाति में बार बार पति करना भी पाप नहीं है। कालानुसार एक देश और एक जाति में भी ऐसा हो सकता है, यथा पञ्चपतिका होती हुई भी द्रौपदी सती मानी गई है।

इस लोक को 'सघन' इसलिए कहा गया है कि कर्म-व्यापार स्थूल रूप में दृष्टिगोचर होता है। सभी प्राणी कर्म-निरत हैं अतः कोलाहलपूर्ण इस संसार में कर्म-लीला होने से ही सघनता है। जब हम कहते हैं कि 'अमुक स्थान पर निकलना भी दूभर है' तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि यहाँ इतने मनुष्य क्रियाशील हैं कि स्वतंत्रता से निकल जाना भी कठिन है। इसके अतिरिक्त यह ऐन्द्रिय व्यापार होता है इसलिए भी स्थूल होने से सघन कहा गया है।

'अविज्ञात' इसलिए कहा गया है कि परस्पर कर्म-व्यापारों को जानना बड़ा दुष्कर है और अधिकांश कर्म तो गुप्त ही रखे जाते हैं।

पहले 'अंधकार सा धुँधला' कह कर पुनः 'धूमधार सा मलिन' उसकी मलिनता का अत्याधिक्य व्यंजित करने के निमित्त ही कहा गया है। शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों में स्वार्थ निहित होता है अतः मलिनता रहती ही है।

(४५ पद्य) भाव राष्ट्र के नियम यहाँ पर
दण्ड बने हैं, सब कराहते।

तात्पर्य यह है कि इच्छालोक में विचरण करने वाले मनुष्य अनेक मनोरथों को उठाते हैं परन्तु कर्म-लोक के नियमों के अनुसार वे उन्हें पूर्ण नहीं कर पाते अतः दुख का अनुभव करते हैं।

इच्छालोक मन होता है और वह न जाने क्या क्या चाहता है परन्तु धार्मिक, सामाजिक एवं राजकीय नियम उनकी पूर्त्ति अर्थात् तदनुकूल कर्म में बाधा डालते हैं,

४१, ४५ पद्य—कामायनी पृष्ठ २६६

जिसमे मनुष्य को बड़ा दुःख होता है। पशु-पक्षियों को भी अनेक नियम उनके स्वातंत्र्य में विघ्न डाल कर कष्ट पहुंचाते हैं।

(४६ पद्य) 'स्थल हो रहे रूप बनाकर'—इसका भाव यह है कि प्रथम मन में इच्छा उद्भूत होती है, पुनः वही इच्छा कार्य रूप में परिणत होती है। इच्छा सूक्ष्म होती है और कर्म स्थूल अतएव यहाँ कर्मों को रूप बना कर स्थूल कहा गया है।

(५४) प्राण तत्व की सघन साधना
जल, हिम उपल यहाँ है बनता;

यहाँ 'प्राण' से तात्पर्य 'पवन और आत्मा' एवं 'सघन' से 'घनीभूत अर्थात् बादल और स्थूल' ये दो दो भाव हैं। अतः अर्थ इस प्रकार होगा—

जिस प्रकार पवन से प्रेरित जल उठ कर घनीभूत हो बादल बनता है और फिर वही शीतल वायु के सम्पर्क से जमकर ओलों के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार इस लोक में जीवात्माएँ स्थूल कर्म में संलग्न रहती हैं। जो प्राण तरलता से कार्य करते हैं, वे ही कर्म की दुरूहता से या असफलतावश निराश हो जड़वत् हो जाते हैं।

(५५) यहाँ नील लोहित ज्वाला कुछ
जला गला कर नित्य ढालती;
चोट सहन कर रुकने वाली,
धातु, न जिसको मृत्यु सालती।

इसमें 'नील लोहित ज्वाला' से 'धुंधले एवं संताप देने वाले कर्म की तपस या कठिनता' एवं 'धातु' से 'जीवात्मा' अर्थ व्यंजित हो रहा है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार लोहा, सोना, चाँदी आदि धातु जलती अग्नि में तप-गल कर नित्य नये रूपों में ढलती रहती हैं परन्तु चोट (हथौड़े आदि की) खाकर भी अपने अस्तित्व को नहीं त्यागतीं इसी प्रकार जीवात्मा भी दुखद कर्म की कठिनता से ढल-ढल कर विविध रूप ग्रहण करती है तथा जन्म-मृत्यु की अनेक आपत्तियों को सहती है परन्तु अपनी सत्ता को खोती नहीं है अथवा कर्म-निरत आत्मा स्वार्थसिद्धि के लिये अनेक आपत्तियों को सहती है और यहाँ तक कि मृत्यु भी उसे भय देकर कर्म से विरत नहीं कर सकती। यही कारण है कि अपने-अपने मनोरथ के अनुसार कर्म मे लीन व्यक्ति मृत्यु का सहज ही आलिंगन कर लेते है।

---

४६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६७
५४, ५५ —वही, पृष्ठ २६८

(५६) वर्षा के घन नाद कर रहे,
तट कूलों को सहज गिराती;
प्लावित करती वन कुंजों को
लक्ष्य प्राप्ति सरिता बह जाती।

इसमें 'वर्षा' से 'विविध इच्छाएँ', 'नाद' से 'कोलाहल या प्रबल वेग से उद्गति', 'तटकूलों' से 'टकराने वाले भाव', 'वन' से 'मन' और कुंजों से 'भाव-प्रदेश' अर्थ ध्वनित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कोई सरिता भयंकर वर्षा के परिणामस्वरूप अपने अपार प्रवाह से तटों को गिराती हुई तथा आस-पास के वन-प्रदेशों को प्लावित करती हुई अपने संगम की ओर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार लक्ष्य-प्राप्ति की कामना तत्सम्बन्धी विविध इच्छाओं से बल पाकर अपने से टकराने वाले या विरोधी भावों को इधर-उधर ठेलती हुई तथा मनोगत अन्य भावप्रदेशों को प्रभावित करती हुई अपने गन्तव्य लक्ष्य की ओर चलती रहती है। सूक्ष्मतः हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि जब मनुष्य के हृदय में किसी कार्य की प्रबल इच्छा होती है तो वह सभी विरोधी इच्छाओं को कुचलता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ने का सबल प्रयत्न करता है।

(६३) अपना परिमित पात्र लिये ये
बूँद बूँद वाले निर्झर से;

इसमें 'पात्र' से 'बुद्धि' और 'निर्झर' से 'ज्ञान' की अभिव्यंजना हो रही है।

(६५ पद्य) उज्ज्वलता इनका निजस्व है
अम्बुज वाले सर सा देखो,
जीवन मधु एकत्र कर रहीं
उन मधुमाखियों सा बस लेखो।

इसमें द्वितीय पंक्ति से यह भाव व्यक्त हो रहा है कि जिस प्रकार सरोवर में उत्पन्न भी कमल पानी से ऊपर रहकर अपनी पवित्रता की रक्षा करता है, उसी प्रकार इस ज्ञानलोक के निवासी अर्थात् ज्ञानी इस संसार में रहते हुए भी अपनी आत्मा को उत्तम बनाए रखते हैं।

अग्रिम दो पंक्तियों से यह भाव ध्वनित हो रहा है कि जिस प्रकार मधु-मक्खियाँ दूसरों के लिये मधु एकत्र करती हैं, उसी प्रकार ये भी ज्ञानार्जन कर दूसरों का हित करते हैं।

---

५६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २६९
६३ —वही, पृष्ठ २७०
६५ —वही, पृष्ठ २७१

(६६)　यहां शरद की धवल ज्योत्स्ना
　　　अंधकार को भेद निखरती;
　　　यह अनवस्था, युगल मिले से
　　　विकल व्यवस्था सदा बिखरती।

इसमें 'शरद की धवल ज्योत्स्ना' से 'ज्ञान' और 'अंधकार' से 'अज्ञान' की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार शारदी निर्मल चन्द्रिका अंधकार को भेद कर अत्यन्त प्रकाशित होती है, उसी प्रकार ज्ञान भी अंधकार का भेदन कर अत्यधिक प्रकाश करता है।

न्याय शास्त्र के अनुसार इसकी कोई व्यवस्था नहीं है कि ज्ञान और अज्ञान में से पूर्व कौन है। जैसे अण्डा पहले या मुर्गी तथा पिता पहले या पुत्र, उसी प्रकार इन दोनों की भी पूर्वापर व्यवस्था करनी असम्भव है। ये दोनों परस्पर सम्बद्ध से प्रतीत होते हैं अर्थात् ज्ञान से अज्ञान की और अज्ञान से ज्ञान की सत्ता और महत्ता है, जिस प्रकार तेज से तम की और तम से तेज की।

(७३ पद्य)　महा ज्योति रेखा सी बनकर
　　　　　श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें;
　　　　　वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
　　　　　जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।

इससे यह ध्वनित हो रहा है कि जब तक श्रद्धा नहीं होती तब तक इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामंजस्य नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जब श्रद्धावश किसी इच्छा की उद्भूति होती है और उसी के अनुसार मनुष्य विवेकपूर्ण कर्म करता है तो ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, सफलता की आशा बलवती हो जाती है।

जैन सिद्धान्तानुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है – 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' तात्पर्य यह है कि मनुष्य प्रथम तत्त्व पर श्रद्धा करे पुनः उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करे और तत्पश्चात् तदनुकूल आचरण करे तो उसे सिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा नहीं।

यही भाव उपर्युक्त पद्य में उपलब्ध है।

(७४)　महाशून्य में ज्वाल सुनहली,
　　　सबको कहती 'नहीं नहीं' सी।

इससे यह भाव अभिव्यक्त हो रहा है कि ज्ञानालोक में साधक को उस महान् विराट् सत्ता से पृथक् और कुछ भासित नहीं होता।

---

६६ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २७१

७३, ७४ —वही, पृष्ठ २७३

(७५) 'शक्ति तरंग प्रलय पावक का'—इसमें ज्ञान को अग्नि कहा गया है। वह इसलिये कि वह कर्मादि को भस्म कर देता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

'ज्ञानाग्निना सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुनः।'

(७६) 'चितिमय चिता धधकती अविरल'—इसमें 'चितिमय चिता' से अभिप्राय है 'चेतना या ज्ञान का प्रकाश'।

(७७ पद्य) स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

चेतन की चार अवस्थाएँ होती है—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीय को ही समाधि कहते हैं।

इनमें जाग्रत अवस्था कर्म की, स्वप्न इच्छा की और सुषुप्ति ज्ञान की प्रतीक है क्योंकि कर्म और जागरण में चेष्टा प्रधान होती है, इच्छा में कल्पनात्मक स्वप्न लिये जाते है और ज्ञान में गम्भीर निद्रा के समान निमग्नता होती है।

उपर्युक्त पद्य का भाव यह है कि जब आत्मा अवचेतन में लीन हो जाती है और ईश्वरीय दिव्य प्रकाश हो जाता है, तब कर्म, इच्छा और ज्ञान की प्रतीक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ विनष्ट हो जाती हैं। इस अवस्था में साधक योगी को अनाहत शब्द सुनाई देता है। श्रद्धापूर्ण मनु इसी समाधि अवस्था में लीन हो गये।

आनन्द

(२१ पद्य) 'गिरि निर्झर चले उछलते'—इत्यादि से यह व्यक्त हो रहा है कि दुःख नष्ट हो गया और सुख फिर से व्याप्त हो गया।

(५५) जग ले उषा के दृग में
सो ले निशि की पलकों में;
हाँ स्वप्न देख ले सुन्दर
उलझन वाली अलकों में।

इसमें 'उषा के दृग' से 'ज्ञानालोक', 'जग ले' से 'तत्व को जान ले', 'निशि की पलकों' से 'ध्यान की एकाग्रता', 'सो ले' से 'तल्लीन हो ले', 'उलझन वाली अलकों' से 'अज्ञान और मोह का अन्ध जाल' एवं 'प्रकट स्वप्न देख ले' से 'महाचिति का मनोदर्शन कर ले' अर्थ व्यक्त हो रहे हैं।

७५, ७६, ७७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २७३
२१ —वही, पृष्ठ २८१
५५ —वही, पृष्ठ २८५

इस व्यंग्यार्थ के अतिरिक्त वाच्यार्थ भी अभिप्रेत हो सकता है ।

(५७) 'दुख सुख को दृश्य बनाता'—इसका भाव यह है कि यदि मानव सुख-दुख में लीन न होकर केवल उनको दृश्यों की भाँति दूर से देखता हुआ अर्थात् उनके प्रति उदासीन रहता हुआ चलता...... ।

(७१) सिकुड़न कौशेय वसन की
थी विश्व-सुन्दरी तन पर;

इसमें 'विश्व' को 'सुन्दरी' बतला कर परागपूर्ण मलयानिल को उसका कौशेय वसन और उससे प्रसरित कोकिल-काकली को उस वसन की सिकुड़न कहा गया है ।

इससे विश्व का मादक और आकर्षक सौन्दर्य व्यंजित हो रहा है ।

(७२ पद्य) सुख सहचर दुःख विदूषक
परिहासपूर्ण कर अभिनय;
सबकी विस्मृति के पट मे
छिप बैठा था अब निर्भय ।

इसमे दुख को सुख रूप राजा का साथ रहने वाला विदूषक कहा गया है और साथ ही यह भी कहा गया है कि आत्मानन्द प्राप्त होने पर दुख-विदूषक अपना परिहासपूर्ण अभिनय करके विस्मृति नेपथ्य में जाकर छिप जाता है ।

'सहचर' से यह ध्वनित किया गया है कि सुख-दुख का जोड़ा है और ये प्रत्येक प्राणी के जीवन में चक्रनेमि-क्रम से' आते-जाते रहते है ।

'विदूषक' पद से 'सुख' 'स्वामित्व' अतएव 'महत्व' व्यंजित हो रहा है और दुख की 'हीनता' । साथ ही एक शंका उत्पन्न हो सकती है कि विदूषक तो आनन्द-दायक होता है परन्तु दुख नहीं फिर इस पद की सार्थकता कैसे हो सकती है । इसका समाधान यह है कि दुख को 'परिहासपूर्ण विदूषक' कहा गया है । जिस प्रकार विदूषक अपनी विकृत चेष्टाओं से हास को उद्दीप्त करता है उसी प्रकार दुख भी मनुष्य को इतना विकृत कर देता है कि प्रायः देखने वाले हँसते हैं । उदाहरणतः मनुष्य विलक्षण रूप से रोता है तो लोग हँसते हैं रोग से दुर्बल हो जाता है तो लोग उपहास करते हैं, चेचक आदि से विकृत हो जाता है तो परिहास करते हैं, निर्धन हो जाय तो फबती कसते हैं और पागल हो जाय तो कहना ही क्या । तात्पर्य यह है कि पर-दुख उपहास-जनक होता है, विदूषक भी दूसरे को ही हँसाता है ।

---

५७ पद्य—कामायनी, पृष्ठ २८९
७१, ७२ —वही, पृष्ठ २९३

'द्वीप बैठा' से यह भाव व्यंजित हो रहा है कि विराट् के आलोक-दर्शन के अनन्तर जो आत्मानन्द व्यक्त होता है, उसमें दुख का भान नहीं होता। बस उस समय आनन्द ही आनन्द होता है।

विशेष—आनन्द सर्ग का आध्यात्मिक सार यह है कि मानव धर्म का सहारा लेकर बुद्धि के पथ-प्रदर्शन में आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए अन्तर्यात्रा करता है। जब वह मानस के तट पर अर्थात् हृदय-प्रदेश में या ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचता है तो उसे महाचिति के प्रकाश रूप में अन्तश्चक्षुओं से दर्शन होते हैं। उस ईश्वरीय आलोक के साथ ही श्रद्धा भी अपना प्रभाव दिखाती है, जिससे मानव स्थूल धर्म को त्याग देता है और बुद्धि आत्म-समर्पण कर देती है। अर्थात् उस स्थिति में धर्म और बुद्धि का कोई कार्य नहीं रहता। अतः समाधि लग जाती है और अखण्ड आनन्द ही आनन्द का अनुभव होता है।

इस स्थिति को प्रसादोक्त भूतकाल की क्रियाओं को वर्तमानकाल में परिवर्तित करके इस प्रकार कह सकते हैं—

समरस होते जड़ चेतन
सुन्दर साकार बने हैं;
चेतना एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना है।

इस प्रकार इस काव्य में व्यंजना से अनेक सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति हुई है। अब हम अलंकार-योजना पर प्रकाश डालेंगे।

: ४ :

कामायनी में अलंकार-योजना

मनुष्य निसर्गतः सौंदर्य प्रेमी है। वह प्रकृति का अंग है और प्रकृति स्वतः सुन्दर है अतः वह प्रागैतिहासिक काल की असभ्यावस्था में भी अत्यधिक रूप में सौन्दर्य से आकृष्ट होता होगा। स्थूल रूपमें बाह्य आकर्षण का नाम ही सौंदर्य है[1]। अतः दम्पति का पारस्परिक एवं सन्तान का जनक-जननी के लिए आकर्षण सौन्दर्य-सर्जन का हेतु अवश्य रहा होगा। परस्पर आकर्षण के लिए असभ्य नर-नारी भी यत्किंचित् प्रसाधन करते ही होंगे। उस समय भी मनुष्य प्रचण्ड मार्तण्ड एवं शान्त शीतल निशाकर की उपमा किसी न किसी पदार्थ से अवश्य देता होगा। विलासपूर्ण दयिता के आनन पर तरंगायित छटा अवश्य ही उसके मन में कोई न कोई उपमा या उत्प्रेक्षा की उद्भावना करती ही होगी। मृगयामें सफल होकर वह अवश्य वीरतापूर्वक कहता होगा कि मैंने अमुक मृग को इसी प्रकार वशीभूत कर लिया, यथा सिंह करता है। इस प्रकार के विचारों की उद्बुद्धि सहज है, और वह पुरुष भी इनसे वञ्चित न होगा। और जब से मानव सभ्य हुआ तब से तो यह स्वतः सम्भाव्य भी है। नैसर्गिक प्रसाधन की साध भी इसी को पोषित करती है कि मनुष्य प्रकृतितः सौंदर्य-प्रेमी है।

जिस प्रकार मनुष्य शारीरिक सौन्दर्य के वर्धन के लिए प्रभूत सामग्री संचित करता और पुनः अलंकरण करता है, उसी प्रकार वाणी को अलंकृत करना उसका सहज गुण है। असभ्यावस्था में भी वह प्रिया से मधुर क्षणों में मधुरालाप करता होगा, उत्साह और क्रोध में ओजपूर्ण वचन कहता होगा एवं हास्यादि में प्रसादोक्तियाँ उद्गारित करता होगा और वह ऐसा चमत्कारपूर्ण शैली से ही करता होगा। ये ही गुण विविध अवसर पर उसकी वाणी को अलंकृत करते होंगे, यह मनोवैज्ञानिक ध्रुव सत्य है।

संसार के सभी देशों में भू-गर्भ से प्रागैतिहासिक काल की जो प्रतिमाएँ निकली हैं, वे तात्कालिक मानव-समाज की हृदयगत आकृतियों की साकार उपमा

---

1. Beauty is such an order and constitution of parts, as either by the primary constitution of our nature, by custom or by caprice is fitted to give a pleasure and satisfaction to the soul.
—History of Asthetic, p. 178.

एवं उत्प्रेक्षाएँ तो हैं। सभ्यावस्था को प्राप्त हो जाने पर मनुष्य के कायिक और वाचिक प्रसाधन हमें अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। ये ही प्रसाधन अलंकार की संज्ञा से प्रसिद्ध हैं। हम यहाँ पर केवल वाचिक अलंकार पर ही विचार करेंगे।

यथा अंग-प्रसाधन के हेतु नाना अलंकार होते हैं, उसी प्रकार वाणी को सुन्दर बनाने के निमित्त अनेक विभूषण होते हैं, जो साहित्य शास्त्र में अलंकारों के नाम से प्रसिद्ध हैं। वेदों में उपमा-रूपक आदि का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है, यथा—

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः'' ॥[1]

ऋग्वेद में 'उपमा' शब्द का व्यवहार भी हुआ है, यथा—

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीये रात्रिमग्न उपमा केतमर्यः।[2]

अग्रिम वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है परन्तु अलंकारों पर कहीं विचार नहीं हुआ। कारण यह है कि वे निगमागम ग्रन्थ थे।

सर्वप्रथम भरत मुनि ने अलंकारों पर विचार किया। उनके नाट्य शास्त्र में षोडश अध्याय ही 'अलंकार लक्षण' संज्ञक है। परन्तु इसमें भी अलंकार की विधिवत् शास्त्रीय परिभाषा नहीं।

भरतमुनि के पश्चात् भामह ने काव्यालंकार में अलंकारों का विवेचन किया परन्तु पृथक् लक्षण वहाँ भी उपलब्ध नहीं। उन्होंने अनेकशः यह तो कहा कि वे वाणी की सुन्दरता को वर्धित करते हैं—

न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्।
वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचमलंकृतिः ॥[3]

अर्थात् वाणी में सहज ही चारुता नहीं होती, उसके अलंकरण के लिए वक्रोक्ति अभीष्ट है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि भामह वक्रोक्ति को अलंकारमूल मानते है।

भामह के उपरान्त दण्डी ने काव्यदर्श में अलंकार का लक्षण इस प्रकार किया— 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।'[4] अर्थात् काव्य की शोभा करने वाले

१—ऋग्वेद, १।१८।२४।७
२—(वही), ५।३।३४।६
३—काव्यालंकार, १।३६
४—काव्यादर्श, २।१

धर्मों को अलकार कहते है । वामन ने काव्य मे निहित सौन्दर्य को ही अलंकार संज्ञा दी है—

'सौन्दर्यमलंकार ।'[1]

आनन्दवर्धन ने शब्द और अर्थ को काम के अंग बतला कर अलंकारों को कटकादि के समान आभूषण निर्मित किया है, यथा—

अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्या कटकादिवत् ।'[2]

मम्मटाचार्य ने भी अलकारों को हारादि के समान शोभाकर ही कहा है—

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः[3]

पं० विश्वनाथ ने भी अलकारों को काव्य के उत्कर्ष-हेतु कहा है—

वाक्यं रसात्मकं काव्यं, दोषास्तस्यापकर्षकाः ।

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालंकाररीतयः ॥[4]

कवि केशव ने भी अलंकारहीन कविता को अशोभनीय कहा है—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।

भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥[5]

इस निषेधात्मक वचन से भी यही सिद्ध होता है कि अलंकार काव्य के शोभाकारक ही होते हैं ।

इस विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि काव्य में रमणीयता-वर्धनार्थ अलंकारों का विधान परमावश्यक है । सहजोक्तियों में अनलंकृत वनिता के समान कुछ आकर्षण तो रहता है परन्तु वे विशेष मनोहारी एवं चमत्कारपूर्ण नहीं होतीं । यह कहना कि 'इस रमणी का मुख सुन्दर है' कोई विशेष आकर्षक वचन नहीं परन्तु यदि कहा जाय कि 'इसका मुख चन्द्र के समान सुन्दर है' तो विशेष चमत्कारपूर्ण प्रतीत होता है ।

अलंकार-योजना की प्रवृत्ति सभ्यासभ्य एवं ग्राम्य-नागरिक सभी में न्यूनाधिक रूप में उपलब्ध होती है । जब सहज सम्भाषण में भी हमें यह मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है तब साहित्य में इसका प्रयोग विशेषतः अभीष्ट एवं उपादेय क्यों न हो । काव्य के तो ये शोभावर्धक ही है अतः कवि-कर्म में इनका सद्भाव अनिवार्य है ।

१—काव्यलकार सूत्र, ।१।२

२—ध्वन्यालोक, २।६

३—काव्य प्रकाश, ८।६७

४—साहित्यदर्पण, १।३

५—कविप्रिया, ५।१

कामायनी में भी अलंकारों की योजना बड़ी समुचित सरणी से हुई है। कवि प्रसाद की प्रतिभा परम सम्पन्न थी अतः कविता उनकी भारती से सहज ही प्रस्फुटित होती थी। काव्य को उन्होंने गढ़ा नहीं वरन् वह स्वतः हृदय से निकला अतः अलंकार भी स्वतः ही प्रयुक्त हुए। अब हम कामायनी के अलंकृत वाक्यों में प्रयुक्त अलंकारों का यथाशक्ति व्यक्तीकरण करते है। इनमें से अनेक उपमादि अलंकार तो बड़े विचित्र और मौलिक ढंग से प्रयुक्त हुए है। कवि का वैचक्षण्य और इनका वैलक्षण्य अपने मनोज्ञ रूप मे आगे दर्शनीय है।

चिन्ता

(१ पद्य) 'भीगे नयनों से' इस वाक्यांश से मनु के नेत्रों की साश्रुता भी व्यंजित हो रही है अतः 'पर्यायोक्त' अलंकार है।

(२) नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन ;

इसकी प्रथम पंक्ति में जल और हिम का उल्लेख कर द्वितीय पंक्ति में उनको क्रमशः तरल और सघन बतलाया गया है अतः 'यथासंख्य' अलंकार है।

(३) दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान ;

इसमें हिम उपमान को हृदय का उपमेय बनाया गया है अतः 'प्रथम प्रतीप' अलंकार है।

'नीरवता सी शिला' में 'धर्मलुप्तोपमा' है।

(४) 'तरुण तपस्वी सा वह बैठा' में 'पूर्णोपमा' है।

× ×

नीचे प्रलय सिंधु लहरों का,
होता था सकरुण अवसान।

इसमे सिन्धूर्मियों के प्रकृतिजनित पर्यवसान को सकरुण कहकर अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है अतः 'हेतूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(५) उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खड़े ;

प्रायः वृक्षों को मनुष्यों की लम्बाई के हेतु उपमान बनाया जाता है परन्तु यहाँ उपमेयभूत तपस्वी मनु को देवदारु वृक्षों का उपमान बनाया गया है अतः 'प्रतीप' अलंकार है।

१, २, ३, ४, ५, (चिन्तासर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ३

(९) वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही,
हँसती-सी पहचानी-सी

इसमें प्रकृति के लिए सुनना, हँसना मानव क्रियाओं का प्रयोग करके असंबंध में सम्बन्ध की कल्पना की गई है अतः 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलंकार है।

(१० पद्य) ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व-वन की व्याली;

इसमें विश्व को वन बना कर चिन्ता में व्याली का आरोप किया गया है। प्रथम आरोप द्वितीय आरोप का कारण है अतः यहाँ 'परम्परित रूपक' अलंकार है।

(११, १२, १३) 'हे अभाव की चपल बालिके' से लेकर 'पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप' तक तीनों पद्यों में मनु चिन्ता का अनेक प्रकार से वर्णन कर रहे हैं अतः 'द्वितीय उल्लेख' अलंकार है।

(१५) आह ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका-घन-सी ;

यहाँ हृदय में खेत का आरोप किया गया है अतः 'रूपक' अलंकार है और चिन्ता को करका-घन से उपमा दी गई है अतः 'उपमा' अलंकार है।

पुनः इसी पद्य के अन्त में 'चिन्ता का निगूढ़ घन से साम्य बतलाया गया है। अतः यहाँ भी 'उपमा' अलंकार है।

(१६) बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता
तेरे हैं कितने नाम !

इसमें चिन्ता के कई नाम बतलाये गये है अतः 'द्वितीय उल्लेख' अलंकार है।

(१७) विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते ! बस चुप कर दे।
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।

इसमें एक ही शून्य हृदय में विस्मृति, अवसाद आदि अनेक तत्वों का आना एवं घटित होना वर्णित है अतः 'पर्याय' अलकार है।

---

९ (चिन्तासर्ग) —कामायनी, पृष्ठ ४
१०, ११, १२, १३ (वही) —(वही), पृष्ठ ५
१५,१६, १७ (वही) —(वही), पृष्ठ ६

(१९) 'भक्षक या रक्षक' में 'छेकानुप्रास' है क्योंकि 'क्ष और क' की उसी क्रम से एक बार आवृत्ति हुई है।

(२०) 'वासना की उपासना' में भी उपर्युक्त कारण से ही 'छेकानुप्रास' है।

(२२ पद्य) इसमें 'जयनाद' में 'दीन विषाद' के प्रतिध्वनि बनकर काँपने की सम्भावना की गई है अतः 'वस्तूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(२३) 'सब विलासिता के नद में'—यहाँ विलासिता में नद का आरोप किया गया है अतः 'रूपक' अलंकार है।

(२४) 'दुःख जलधि का नाद अपार'—यहाँ भी दुःख में जलधि का आरोप होने से 'रूपक' है।

(२५) वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ?
स्वप्न रहा या छलना थी।

इसम विलास में स्वप्न और छलना का सन्देह किया गया है अतः 'सन्देह' अलंकार है।

(२६) इसमें 'मधुमय निश्वासों' को 'सुरभित अञ्चल' से उपमा दी गई है अतः 'उपमा' अलंकार है।

(२७) सुख, केवल सुख का वह संग्रह,
केन्द्रीभूत हुआ इतना;
छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।

इसमें इतना और जितना वाचक शब्दों से भिन्नधर्मा सुख और तुषार का साम्य बतलाया गया है अतः 'उदाहरण' अलंकार है।

(२८) सब कुछ थे स्वायत्त, विश्व के
बल, वैभव, आनन्द अपार;

यहाँ बल, वैभव और आनन्द अनेक पदार्थों का 'स्वायत्त थे' इस क्रिया रूप एक ही धर्म से सम्बन्ध बतलाया गया है अतः 'तुल्ययोगिता' अलंकार है।

(३०) 'कँपती धरणी' में 'विरोधाभास' अलंकार है।

(३२) गया, सभी कुछ गया, मधुर तम
सुरबालाओं का शृंगार;

१९, २० (चिन्तासर्ग)—(कामायनी), पृष्ठ ६
२२, २३ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ ७
२४, २५, २६, २७ (वही) —वही, पृष्ठ ८
२८, ३०, ३२ (वही) —वही, पृष्ठ ९

उषा ज्योत्स्ना सा यौवन-स्मित
मधुप सदृश निश्चित विहार।

इसमें शृंगार, यौवन-स्मित एवं विहार अनेक प्रकृत पदार्थों का 'गया' क्रियारूप एक ही धर्म से सम्बन्ध है अतः 'तुल्ययोगिता' अलंकार है।

(३३ पद्य) भरी वासना—सरिता का वह
कैसा था मदमत्त प्रवाह,
प्रलय-जलधि में संगम जिसका
देख हृदय था उठा कराह।

इसमें 'सांग रूपक' है क्योंकि वासना में सरिता का आरोप करके प्रलय में जलधि का आरोप किया गया है।

(३४) चिर किशोर वय, नित्य विलासी,
सुरभित जिससे रहा दिगंत;
आज तिरोहित हुआ कहाँ वह
मधु से पूर्ण अनंत वसंत?

इसमें वसंत को अनंत बताकर 'तिरोहित हुआ' कहा गया है अतः 'विरोधाभास' अलंकार है। साथ ही उसे चिर किशोरवय, नित्य विलासी कहा गया है। ये विशेषण साभिप्राय हैं क्योंकि विरोधाभास में और भी कुतूहल उत्पन्न करते हैं अतः 'परिकर' अलंकार भी है।

(४०) कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्पवृक्ष का पीत पराग।

इसमें 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलंकार है क्योंकि अप्सराओं के कपोलों पर कल्पवृक्ष के पीत पराग का बिछलना कह कर कोई सम्बन्ध न होते हुए भी मृदुलता प्रतिपादनार्थ सम्बन्ध बतलाया गया है।

(४१) विकल वासना के प्रतिनिधि वे
सब मुरझाये चले गये;
आह! जले अपनी ज्वाला से,
फिर वे जल में गले, गये।

इसमें 'वे' एक ही कर्ता से मुरझाये चले गये, जले, गले एवं गये अनेक क्रियाओं का सम्बन्ध बतलाया गया है अतः 'कारक' अलंकार है।

३३, ३४ पद्य (चिन्तासर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १०
४०, ४१ (वही) —वही, पृष्ठ ११

(४२) अरी उपेक्षाभरी अमरते !
री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !

इसमें 'उपेक्षाभरी' विशेपण का अतृप्ति आदि से विरोध है अतः 'विरोधाभास' अलंकार है साथ ही साभिप्राय होने से 'परिकर' है।

(४४ पद्य) रत्न सौध के वातायन, जिनमें
आता मधु मदिर समीर;
टकराता होगी अब उनमें
तिमिंगिलों की भीड़ अधीर।

इसमें एक ही स्थान में समीर और तिमिंगिलों की भीड़ इन अनेक पदार्थों का क्रमशः आना वर्णित है अतः 'पर्याय' अलंकार है।

(४५) 'देव कामिनी के……' इत्यादि पद्य में भी 'पर्याय' अलंकार है क्योंकि यहाँ भी एक स्थान पर नलिनों की सृष्टि और भीषण वृष्टि का होना वर्णित है।

(४६) वे अम्लान कुसुम सुरभित,
मणि रचित मनोहर मालायें,
बनीं शृंखला, जकड़ी जिनमें
विलासिनी सुरबालायें।

इसमें 'मालायें शृंखला बनीं और उनसे सुरबालायें जकड़ गईं' ऐसा कह कर विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति बतलाई गई है अतः 'पञ्चम विभावना' अलंकार है।

(४७) 'देव-यजन के……' इत्यादि में भी लहरियों की माला के जलने के लिए ज्वाला विरोधा कारण होने से 'पञ्चम विभावना' है।

(४८) व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय
यह प्रालेय हलाहल नीर !

यहाँ वर्षा में अश्रु-वर्षा की सम्भावना की गई है अतः 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(४६) 'कठिन कुलिश होते थे चूर' इसमें कुलिश को कठिन बतला कर उनका चूर होना उल्लिखित है अतः 'विरोधाभास' है।

(५०) दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के ?

---

४२ पद्य—(चिन्तासर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १२
४४, ४५ (वही) —वही, पृष्ठ १२
४६, ४७, ४८, ४६, ५० (वही) —वही, पृष्ठ १३

यहाँ 'सन्देह' अलंकार है क्योंकि धूम और जलधर में सन्देह है।

(५२ पद्य) उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।

इसमें 'फलोत्प्रेक्षा' है क्योंकि अफल में फल की संभावना की गई है।

(५३) मानो नील व्योम उतरा हो
आलिंगन के हेतु अशेष।

यहाँ भी इसीलिए 'फलोत्प्रेक्षा' है कि व्योम का आलिंगन के हेतु नीचे उतरना कह कर अफल मे फल की संभावना की गई है।

(५४) 'उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ'—इत्यादि में लहरियों का काल के जालों एवं व्यालों से साम्य बतलाया गया है अतः 'उपमा' अलंकार है।

(५६) 'व्यस्त महा कच्छप सी धरणी'—में 'उपमा' है।

(५८) 'क्षितिज क्षीण फिर लीन हुआ'—इसमें 'कारक' अलंकार है क्योंकि 'क्षीण हुआ' और 'लीन हुआ' इन दो क्रियाओं का एक ही कर्त्ता 'क्षितिज' से सम्बन्ध बतलाया गया है।

(६१) कातरता से भरी निराशा,
देख निपति पथ बनी वहीं।

इसमें 'हेतु' अलंकार है क्योंकि पथ के कारण नियति को कार्य पथ ही बना कर कारण और कार्य में अभेद दिखलाया गया है।

(६२) 'लहरें व्योम चूमती उठतीं'—इसमें 'सम्बन्धातिशयोक्ति' है क्योंकि लहरों का व्योम चूमने से सम्बन्ध न होते हुए भी सम्बन्ध बतलाया गया है।

(६३) 'चपलायें उस जलधि-विश्व में'—इत्यादि में चपलाओं के जलधि-विश्व में चमत्कृत होने से उत्प्रेक्षा की गई है कि वे ऐसी लग रही थी मानो विराट् वाड़व की ज्वालाएँ खण्ड खण्ड होकर रो रही हों अतः 'उत्प्रेक्षा अलंकार' है।

(६४) जलनिधि के तल वासी जलचर
विकल निकलते उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी
कौन! कहाँ! कब! सुख पाते?

५२, ५३, ५४ पद्य (चिन्तासर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १४
५६, ५८ (वही) —वही, पृष्ठ १५
६१, ६२, ६३, ६४ (वही) —वही, पृष्ठ १६

(६६) 'तारा बुद-बुद से लगते'—में 'उपमा' है।

(६८) महा मत्स्य का एक चपेटा

दीन पोत का मरण रहा।

इसमें 'परिकर' अलंकार है क्योंकि मत्स्य के विशेषण 'महा' और पोत के विशेषण 'दीन' का प्रयोग पोत के विनाश में साभिप्राय है।

(६९) देव-सृष्टि का ध्वंस अचानक

श्वास लगा लेने फिर से।

यहाँ ध्वंस का श्वास लेने से विरोध है अतः 'विरोधाभास' है।

(७०) आह सर्ग के प्रथम अंक का

अधम पात्रमय-सा विष्कंभ।

इसमें 'उपमा' अलंकार है।

(७१) 'ओ जीवन की मरु मरीचिका'—में 'रूपक' है।

(७२) मौन! नाश! विध्वंस, अँधेरा!

शून्य बना जो प्रकट अभाव,

वही सत्य है...... !

इसमें मौन, नाश, विध्वंस आदि का एक ही धर्म 'सत्य' के साथ सम्बन्ध बतलाया गया है अतः 'प्रथम तुल्ययोगिता' है।

(७३) 'अंक हिमानी सा शीतल'—में उपमा है।

(७४) 'महा नृत्य का विषम......' इत्यादि में 'उल्लेख' है क्योंकि एक मृत्यु का अनेक प्रकार से वर्णन है।

(७५) 'अन्धकार के अट्टहास सी'—में उपमा है।

(७६) 'सौदामिनी-संधि सा सुन्दर'—में भी उपमा है।

(७८) 'धू-धू करता नाच रहा था'—में 'वीप्सा' अलंकार है।

(७९) परम व्योम से भौतिक कण सी

घने कुहासों की थी वृष्टि।

इसमें 'उपमा' अलंकार है।

(८०) 'प्रलय निशा का होता प्रात'—में 'रूपक' है।

६६, ६८, ६९ पद्य (चिन्ता सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १७

७०, ७१, ७२, ७३ (वही) —वही, पृष्ठ १८

७४, ७५, ७६ (वही) —वही, पृष्ठ १९

७८, ७९, ८० (वही) —वही, पृष्ठ २०

आशा

(१ पद्य) उषा सुनहले तीर बरसती

जय लक्ष्मी-सी उदित हुई;

इसमें 'उपमा' है।

(३) 'नव कोमल आलोक बिखरता'—इत्यादि में 'उदाहरण' अलंकार है क्योंकि भिन्नधर्मा आलोक और पराग में 'जैसे' वाचक शब्द द्वारा साम्य बतलाया है।

(५) नेत्र निमीलित करती मानो

प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने;

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है क्योंकि वनस्पतियों के हिमजल से निखरने में प्रकृति के जगने की संभावना की गई है।

(६) 'सिंधु सेज पर धरा वधू' में धरा में वधू का आरोप सिंधु में सेज के आरोप का कारण हुआ है अतः 'परम्परित रूपक' है।

(७) जैसे कोलाहल सोया हो

हिम शीतल जड़ता सा श्रान्त;

इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि कोलाहल के शान्त होने में जड़ता एवं श्रान्तता की संभावना की गई है।

(८) इंद्रनील मणि महा चषक था

सोम रहित उलटा लटका;

आज पवन मृदु साँस ले रहा

जैसे बीत गया खटका।

इसके प्रथम दो चरणों में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत आकाश का नाम न लेकर अप्रस्तुत चषक का उल्लेख किया गया है।

अन्तिम दो चरणों में 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि पवन की मन्द गति में बेखटके होने की सम्भावना की गई है।

(९) वह विराट् था हेम घोलता

नया रंग भरने को आज;

यहाँ सूर्योदय के प्रकाश में नया रंग भरने के उद्देश्य से हेम घोलने की सम्भावना की गई है अतः 'फलोत्प्रेक्षा' है।

१, ३, ५ पद्य (आशा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २३

६, ७, ८, ९ (वही) —वही, पृष्ठ २४

(१० पद) विश्वदेव, सविता या पूषा

सोम, मरुत, चंचल पवमान

वरुण आदि सब घूम रहे हैं

इसमें विश्वदेवा आदि का एक ही क्रिया 'घूम रहे हैं' के साथ सम्बन्ध है अतः 'प्रथम तुल्ययोगिता' है।

(११) अरे ! प्रकृति के शक्ति-चिह्न ये

फिर भी कितने निबल रहे !

इनमें शक्ति चिह्नों को निबल बताया गया है अतः 'विरोधाभास' अलंकार है।

(१२) 'हाँ, कि गर्व-रथ में तुरंग सा'—इत्यादि में 'रूपक' और 'उपमा' का संकर है।

(१५) 'सदा मौन हो प्रवचन करते'—में 'विरोधाभास' है।

(१८) 'यह था मधुर स्वप्न-सी झिलमिल', 'व्याकुलता सी' में 'मालोपमा' है।

(१९) इसी प्रकार 'मधुर जागरण सी', 'स्मिति की लहरों सी' में भी 'मालोपमा' है।

(२०) 'खेल रहा है शीतल दाह'—में 'विरोधाभास' है क्योंकि दाह का शीतलता से विरोध है।

(२५) 'स्वर्ण शालियों की कलमें थीं'—इत्यादि में दूर-दूर तक फैली हुई स्वर्ण शालियों की कलमों में शरद्‌लक्ष्मी के मन्दिर के मार्ग की संभावना की गई है अतः 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(२६) 'विश्व-कल्पना सा ऊँचा वह'—में 'पूर्णोपमा' है।

(२९) 'उस असीम नीले अंचल में'—इत्यादि में किसी की मुसक्यान अर्थात् विद्युत्प्रकाश में हिमालय की हँसी की संभावना की गई है अतः 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(३०) शिला-संधियों में टकरा कर

पवन भर रहा था गुंजार,

उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का

करता चारण सदृश प्रचार।

१०, ११, १२ पद्य (आशा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २५

१५ (वही) —वही, पृष्ठ २६

१८, १९, २० (वही) —वही, पृष्ठ २७

२५ (वही) —वही, पृष्ठ २८

२६, २९, ३० (वही) —वही, पृष्ठ २९

इसमें पवन को चारण सदृश कहा गया है अतः 'उपमा' है और उसकी गुंजार में चारण के प्रचार की संभावना की गई है अतः 'उत्प्रेक्षा' है। इन दोनों का 'संकर' है।

(३१ पद्य) 'घन माला की रंग-बिरंगी छींट' और 'तुषार किरीट' में 'रूपक' अलंकार है।

(३२) इस अनन्त प्रांगण में मानो
जोड़ रही है मौन सभा।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(३५) थी अनन्त की गोद सदृश जो
विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय;

इसमें 'उपमा' अलकार है।

(३६) उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है
क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त;

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है।

(४५) एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि अग्नि के पास बैठ कर मननशील मनु में सजीव तपस्या की सम्भावना की गई है।

(५०) उस एकांत नियति शासन में
चले विवश धीरे धीरे,
एक शान्त स्पंदन लहरों का
होता ज्यों सागर तीरे।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है क्योंकि भिन्नधर्मा मनु और लहरों की क्रियाओं में 'ज्यों' वाचक शब्द से साम्य बतलाया गया है।

(५२) प्रहर दिवस रजनी आती थी
चल जाती संदेश-विहीन;
एक विरागपूर्ण संसृति में
ज्यों निष्फल आरंभ नवीन।

३१, ३२, ३५ पद्य (आशा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ३०
३६ (वही) —वही, पृष्ठ ३१
४५ (वही) —वही, पृष्ठ ३३
५०, ५२ (वही) —वही, पृष्ठ ३४

इसकी प्रथम पंक्ति में 'प्रथम तुल्ययोगिता' है क्योंकि प्रहर, आदि अनेक पदार्थों का एक ही 'आती थी' क्रिया से सम्बन्ध है।

प्रथम दो पंक्तियों में 'कारक दीपक' भी है क्योंकि प्रहर आदि अनेक पदार्थों का 'आती थी' और 'चल जाती' दो क्रियाओं से सम्बन्ध है।

सम्पूर्ण पद्य मे 'उदाहरण' अलंकार है।

(५६ पद्य) व्यक्त नील में चल प्रकाश का
कंपन सुख बन बजता था;

इसमें 'हेतु' अलंकार है क्योंकि सुख के हेतु प्रकाश के कम्पन को ही सुख रूप में वर्णित किया गया है।

(६२, ६३) 'आह! कल्पना का सुन्दर यह'—इत्यादि दोनों पद्यों में सम्भावना' अलंकार है।

(६४) कब तक और अकेले? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो?
किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो!

इसमें विवक्षित वस्तु कथा को कहने का निषेध सा किया गया है अतः 'आक्षेप' अलंकार है।

(६५, ६६) 'तम के सुन्दरतम रहस्य, हे—' इत्यादि दोनों पद्यों में एक तारे का अनेक प्रकार से वर्णन है अतः 'द्वितीय उल्लेख' है।

(६८) 'ले सन्ध्या का तारा दीप' में 'रूपक' है।

फाड़ सुनहली साड़ी उसकी
तू हँसती क्यों अरी प्रतीप?

इसमें 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत संध्याकालीन मेघों का नाम न न लेकर अप्रस्तुत सुनहली साड़ी का ही उल्लेख है।

(७०) 'विश्व कमल की मृदुल मधुकरी' में 'परम्परित रूपक' है।

(७१) 'यों समीर मिस हाँफ रही-सी'' में 'कैतवापन्हुति' है क्योंकि 'मिस' शब्द द्वारा समीर का निषेध करके रजनी में हाँफना बतलाया है।

---

५६ पद्य	(आशा सर्ग)	—कामायनी,	पृष्ठ ३५
६२, ६३, ६४	(वही)	—(वही),	पृष्ठ ३७
६५, ६६	(वही)	—(वही),	पृष्ठ ३७-३८
६८	(वही)	—(वही),	पृष्ठ ३८
७०, ७१	(वही)	—(वही),	पृष्ठ ३९

(७४) रजत कुसुम के नव पराग-सी
उड़ा न दे तू इतनी धूल ;
इस ज्योत्स्ना की······ !

इसमें प्रस्तुत चन्द्रमा का नाम न लेकर अप्रस्तुत रजत कुसुम का ही उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है। 'पराग सी धूल' मे उपमा' है और ज्योत्स्ना की धूल में 'रूपक' है।

(७५, ७६) इनमे 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि तारों के स्थान पर केवल मणिराजी और आकाश के स्थान पर नील वसन का ही उल्लेख हुआ है।

श्रद्धा

(१ पद्य) कौन तुम ! संसृति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,

इसमें संसृति में जलनिधि का और तुम (मनु) में मणि का आरोप होने से 'रूपक' अलंकार है।

(२) मधुर विश्रांत और एकांत —इत्यादि में श्रद्धा द्वारा मौन का अनेक प्रकार से वर्णन होने के कारण 'द्वितीय उल्लेख' है।

(३) 'सुना यह मनु ने मधु गुंजार' इत्यादि में 'उपमा' है।

(५) और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम ;
कुसुम-वैभव में लता समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।

द्वितीय पंक्ति मे इंद्रजाल के हेतुभूत सुन्दर दृश्य (श्रद्धा का रूप) को ही इंद्रजाल मान लिया गया है अतः हेतु अलकार है। तृतीय पंक्ति में 'उपमा' और चतुर्थ में 'रूपक' है।

(६) हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार' है।

---

७४ पद्य (आशासर्ग)—कामायनी पृष्ठ ३९
७५, ७६ (वही) —(वही), पृष्ठ ४०
१, २, ३ (श्रद्धा सर्ग)—(वही), पृष्ठ ४५
५, ६, (वही) —(वही) पृष्ठ ४६

(८) नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

इसमें भी 'उदाहरण' है। बिजली में फूल का आरोप मेघ में वन के आरोप का कारण है अतः 'परम्परित रूपक' है।

(९) आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि-मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

यहाँ नीले मेघ चर्म में श्याम घन की और श्रद्धा के मुख में अरुण रवि-मंडल की सम्भावना की गई है अत: 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(१० पद्य) या कि नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कान्त;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत

इसमें भी 'वस्तूत्प्रेक्षा' है। इससे पूर्व और इस पद्य में 'या' शब्द से 'सन्देह' भी व्यंजित है।

(११) घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।

यहाँ बालों में घन-शावकों की और मुख में विधु की सुधा भरने के निमित्त कल्पना की गई है अत: 'फलोत्प्रेक्षा' है।

(१२, १३, १४) 'और उस मुख पर वह मुसक्यान।' इत्यादि तीन पद्यों में 'उत्प्रेक्षा' अलकार है।

(१५, १६) 'कुसुम कानन-अंचल में मन्द'—इत्यादि दोनों पद्यों में 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(१८) शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल नहीं सका जो कि हिम खंड

८, ९ (श्रद्धा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ४६
१०, ११, १२, १३, १४ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ ४७
१५, १६, १८ (वही) —वही, पृष्ठ ४८

दौड़कर मिला न जलनिधि श्रंक
आह वैसा ही हूँ पाषण्ड।

इसमें 'मालोपमा' है क्योंकि यहां मनु ने अपनी तुलना शैल और हिम-ख से की है।

(१६) 'पहेली सा जीवन है व्यस्त'—में 'उपमा' है।

(२१) 'वायु की भटकी एक तरंग'—में 'रूपक' है।

(२२) एक विस्मृति का स्तूप अचेत,
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिम्ब;
और जड़ता की जीवन राशि
सफलता का संकलित विलम्ब।

इसमें मनु अपना अनेक प्रकार से वर्णन कर रहे हैं अतः 'द्वितीय उल्लेख' है।

(२३, २४) 'कौन हो तुम वसंत के दूत'—इत्यादि दोनों पद्यों में मनु श्रद्धा का अनेक प्रकार से वर्णन कर रहे हैं अतः यहाँ भी 'द्वितीय उल्लेख' है।

(२५ पद्य) लगा कहने आगंतुक व्यक्ति
मिटाता उत्कंठा सविशेष;
दे रहा हो कोकिल सानन्द
सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि आगंतुक व्यक्ति में कोकिल की और मनु में सुमन की सम्भावना की गई है।

(३८) 'एक परदा पर भीना नील'—यहाँ प्रस्तुत आकाश का उल्लेख न कर अप्रस्तुत नीले परदे का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है।

(४०) विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान्;
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

१६, २१, २२ (श्रद्धा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ४६
२३, २४, २५ (वही)—वही, पृष्ठ ५०
३८ (वही)—वही, पृष्ठ ५३
४० (वही)—वही, पृष्ठ ५४

इसमें विषमता की पीड़ा को जो हेय है, 'भूमा का मधुमय दान' कह कर उपादेय बतलाया है अतः 'अनुज्ञा' अलंकार है। साहित्य दर्पणकार ने इसी को 'अनुकूल' कहा है।

(४१) 'उमड़ता कारण जलधि समान'—में 'उपमा' और 'बिखरते-सुखमणि' में 'रूपक' है।

(४२) 'मधुर मारुत से ये उच्छ्वास'—में उपमा और चतुर्थ पंक्ति में 'मानस' शब्द में 'श्लेष' है।

(४८) 'युगों की चट्टानों' में 'रूपक' है।

(५३) 'दया, माया, ममता लो आज' में दया, माया, ममता का एक ही क्रिया 'लो' से सम्बन्ध है अतः 'प्रथम तुल्ययोगिता' है।

(५४) 'विश्व भर सौरभ से भर जाय' में 'यमक' है।

(५७) देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटा कर आज;
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज।

यहाँ अनिष्ट ध्वंस को 'मानव संपत्ति बन' वाक्यांश से अभीष्ट रूप में वर्णित किया गया है अतः 'अनुज्ञा' अलंकार है।

(६२) 'विश्व की दुर्बलता बल बने' में 'विरोधाभास' है।

काम

(५ पद्य) 'जीवन दिगंत के अम्बर में' में 'रूपक' अलंकार है।

(६) 'शिशु चित्रकार' में भी 'रूपक' है।

(७) 'वह कुसुम दुग्ध सी मधुधारा' में 'उपमा' है और 'मन अजिर' में 'रूपक' है।

(८) वे फूल और वह हँसी रही
वह सौरभ, वह निश्वास छना;

४१, ४२ पद्य (श्रद्धा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ५४
४८ (वही) —वही, पृष्ठ ५६
५३, ५४ (वही) —वही, पृष्ठ ५७
५७ (वही) —वही, पृष्ठ ५८
६२ (वही) —वही, पृष्ठ ५९
५ (काम सर्ग)—वही, पृष्ठ ६३
६, ७, ८ (वही) —वही, पृष्ठ ६४

वह कलरव, वह संगीत अरे
वह कोलाहल एकांत बना !

इसमें 'तुल्ययोगिता' अलंकार है क्योंकि फूल, हँसी, सौरभ, निश्वास, कलरव, संगीत और कोलाहल अनेक पदार्थों का एक ही धर्म 'एकांत बना' के साथ सम्बन्ध है।

(१०) 'ओ नील आवरण जगती के'—इसमें प्रस्तुत आकाश का उल्लेख न कर अप्रस्तुत नील आवरण का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है।

(११) 'तारों के फूल' में 'रूपक' अलंकार है।

(१२) 'हिम कणिका ही मकरंद हुई' में भी 'रूपक' है।

(१३) इस इंदीवर से गंध भरी
बुनती जाली मधु की धारा;
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहनी सी कारा।

इसके प्रथम चरण में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि आकाश का नाम न लेकर इंदीवर का उल्लेख किया गया है। शेष में रूपक है क्योंकि मन में मधुकर का और मधु धारा में कारा का आरोप किया गया है।

(१९) उलझन प्राणों के धागों की
सुलझन का समझूँ मान तुम्हें।

इसमें उलझन और सुलझन का विरोध होने से 'विरोधाभास' है और 'प्राणों के धागों' में रूपक है अतः दोनों का 'संकर' है।

(२०) 'अलकों में लुकते तारा सी' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि मेघमाला का उल्लेख न करके 'अलकों' का उल्लेख है। 'तारा सी' से 'उपमा' सूचित है।

(५० पद्य) 'कोरक अंकुर सा जन्म रहा' में 'उपमा' है।

'उस नवल सर्ग के कानन में'—इसमें 'रूपक' है।

(५५) 'यह नीड़ मनोहर कृतियों का' में 'रूपक' है।

(६२, ६३) 'हम दोनों की संतान वही'—इत्यादि दो पद्यों में 'द्वितीय उल्लेख' है क्योंकि काम ने श्रद्धा का अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

१०, ११, १२, १३ (काम सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ६५
१९ (वही)—वही, पृष्ठ ६६
२० (वही)—वही, पृष्ठ ६७
५० (वही)—वही, पृष्ठ ७३
५५ (वही)—वही, पृष्ठ ७५
६२, ६३ (वही)—वही, पृष्ठ ७७

वासना

(२ पद्य) एक जीवन सिंधु था, तो वह लहर लघु लोल;
एक नवल प्रभात तो वह स्वर्ण किरण अमोल।
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम;
दूसरा रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम।

इसमें 'सम' अलंकार है क्योंकि मनु और श्रद्धा की पारस्परिक अनुरूपता के कारण प्रशंसा की गई है।

(४) थी प्रगति पर अड़ा रहता था सतत अटकाव।

इसमें प्रगति और अटकाव में विरोध होने से 'विरोधाभास' है।

(५) 'नित्य परिचित हो रहे...' इत्यादि में 'उदाहरण' है।

(१०) एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ;
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।

इसमें पशु में मोह और श्रद्धा में करुणा की सम्भावना होने से 'वस्तूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(१३) वह विराग-विभूति ईर्ष्या-पवन से हो व्यस्त;
इसमे 'रूपक' अलकार है।

(१४ पद्य) आह यह पशु और इतना सरल सुन्दर स्नेह!

इसमें पशु और सरल स्नेह इन दो विरूप पदार्थों का मेल बतलाया गया है अतः 'विषम' अलंकार है।

(१६) यही तो मैं ज्वलित वाडव-वन्हि नित्य अशांत।
सिन्धु लहरों सा करें शीतल मुझे सब शांत।

इसमें 'वाडव-वन्हि' में रूपक है और 'सिन्धु लहरों सा' से 'उपमा' प्रकट हो रही है।

(१७) 'चपल शैशव सा'—में 'उपमा' है क्योंकि शैशव से अतिथि की उपमा दी गई है।

(१८) 'नत हुआ फण दृप्त ईर्ष्या का' में 'रूपक' है।

२, ४, ५ (वासना सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ८१
१० (वही) —वही, पृष्ठ ८३
१३ (वही) —वही, पृष्ठ ८४
१४ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ ८४
१६, १७, १८ (वही) —वही पृष्ठ ८५

(२४) वासना की मधु छाया ! स्वास्थ्य बल विश्राम !
हृदय की सौंदर्य प्रतिमा ! कौन तुम छवि-धाम !

इसमें 'द्वितीय उल्लेख' है क्योंकि मनु द्वारा श्रद्धा का अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है।

(२५) 'कुन्द मन्दिर सी हँसी' में 'उपमा' अलकार है।

(२६) 'स्नेह-संबल साथ' में 'रूपक' है।

(३१) 'शिशिर कण की सेज' में भी 'रूपक' है।

(३२) पूर्वजन्म कहूँ कि था स्पृहणीय मधुर अतीत;
इसमें 'सन्देह' अलंकार है क्योंकि 'कि' पद से संदेह प्रकट किया गया है।

(३४) पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु-भार।
इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि मधु-भार हेतु न होते हुए भी पवन की मन्थर गति में उसको हेतु बतलाया गया है।

(३६) अग्नि कोट समान जलती है भरी उत्साह,
और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह !

इसमें जलन कारण के होते हुए भी उसके कार्य छाले और दाह का निषेध किया गया है अतः विशेषोक्ति' अलंकार है।

(३७ पद्य) कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार,
प्राण सत्ता की मनोहर भेद-सी सुकुमार !

इसमें 'मालोपमा' अलंकार है।

(३८) श्याम नभ में मधु किरन-सा फिर वही मृदु हास,
इसमें 'उपमा' अलंकार है।

(४०) विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील,
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मंगल खील;

इसमें प्रस्तुत आकाश और तारों का उल्लेख न करके अप्रस्तुत नील आवरण और मंगल खीलों का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है।

२४, २५ पद्य (वासना सर्ग)—कामायनी पृष्ठ ८७
२६, ३१ (वही) —वही पृष्ठ ८८
३२, ३४ (वही) —वही पृष्ठ ८९
३६, ३७, ३८ (वही) —वही, पृष्ठ ९०
४० (वही) —वही, पृष्ठ ९१

(४३) रही विस्मृति-सिंधु में स्मृति-नाव विकल अकूल !

इसमें 'रूपक' अलंकार है।

(५०) धूम लतिका सी गगन तरु पर न चढ़ती दीन,

दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस भार नवीन !

यहाँ 'धूम लतिका सी' में 'उपमा' और 'गगन तरु' में 'रूपक' है तथा अग्रिम पंक्ति में 'उदाहरण' है अतः इन तीनों का 'संकर' है।

लज्जा

(१ २, ३ पद्य) कोमल किसलय के अंचल में,

नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी;

इत्यादि तीन पद्यों में 'उदाहरण' अलंकार है।

(१२) 'किरनों का रज्जु' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत साहस का उल्लेख न कर अप्रस्तुत किरनों का उल्लेख है।

'रस के निर्झर' में 'रूपक' अलंकार है।

(१५ पद्य) स्वचछंद सुमन जो खिले रहे,

जीवन वन से हो बीन रही !

इसमें भाव में सुमन का और जीवन में वन का आरोप है अतः 'सांग रूपक' है।

(१८, १९) 'अंबर-चुम्बी'—इत्यादि दोनों पद्यों में 'उल्लेख' अलंकार है क्योंकि 'यौवन' का अनेक प्रकार से वर्णन है।

(२०) 'नयनों का कल्याण' में 'रूपक' एवं 'आनन्द सुमन सा विकसा हो' में 'पूर्णोपमा' है। उत्तरार्ध के 'वन वैभव' में 'रूपक' और 'पंचम स्वर पिक-सा' में 'उपमा' है। इस प्रकार पद्य के दोनों अर्धांशों में रूपक और उपमा का 'संकर' है।

(२१) 'मूर्च्छना समान मचलता सा' में 'उपमा' है।

(२२) नयनों की नीलम की घाटी

जिस रस घन से छा जाती हो।

---

४३ पद्य (वही) —कामायनी, पृष्ठ ९२

५० (वही) —वही, पृष्ठ ९४

१, २, ३ (लज्जा सर्ग)—वही, पृष्ठ ९७

१२, १५ (वही) —वही, पृष्ठ ९९

१८, १९ (वही) —वही, पृष्ठ १००

२०, २१, २२ (वही) —वही, पृष्ठ १०१

इसके प्रथम चरण में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत नीली पुतलियों का उल्लेख न करके अप्रस्तुत 'नीलम की घाटी' का उल्लेख है। द्वितीय चरण में 'रस-घन' में 'रूपक' है।

(२३, २४) 'हो नयनों का कल्याण बना' इत्यादि पाँच पद्यों में 'उल्लेख' अलंकार है क्योंकि 'यौवन' का अनेकधा वर्णन है।

(२५, २६, २७) 'फूलों की कोमल'—इत्यादि तीन पद्यों में यौवन का ही वर्णन होने से 'उल्लेख' अलंकार है।

कोमल किसलय मर्मर रव से
जिसका जयघोष सुनाते हों;

इसमें 'कैतवापन्हुति' है क्योंकि 'मर्मर रव' का निषेध करके 'जयघोष' का कथन किया गया है। 'मिस' शब्द ज्ञेय है।

(२८, २९) 'मैं उसी चपल की धात्री हूँ'—इत्यादि दो पद्यों में 'उल्लेख' है क्योंकि लज्जा अपना अनेक प्रकार से वर्णन कर रही है।

(३०, ३३) 'अवशिष्ट रह गई अनुभव में'—इत्यादि चार पद्यों में भी 'द्वितीय उल्लेख' है क्योंकि लज्जा अपना अनेकशः वर्णन कर रही है।

(३६) 'घनश्याम खंड सी आँखों में' में 'उपमा' है।
(३७ पद्य) 'विश्वास महातरु' में 'रूपक' है।
(३८) 'छाया पथ में तारक द्युति सी' में 'उपमा' है।

(४२) मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ;
भुज लता फँसा कर नर तरु से
झूले सी झोंके खाती हूँ।

इसके पूर्वार्ध में 'विषम' अलंकार है क्योंकि श्रद्धा की इच्छा के प्रतिकूल बात का वर्णन है।

२३, २४ पद्य (लज्जा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १०१
२५, २६, २७ (वही) —वही, पृष्ठ १०२
२८, २९ (वही) —वही, पृष्ठ १०२
३०, ३१, ३२, ३३ (वही) —वही, पृष्ठ १०३
३६, ३७, ३८ (वही) —वही, पृष्ठ १०४
४२ (वही) —वही, पृष्ठ १०५

'भुज-लता' और 'नर-तरु' में 'रूपक' है एवं 'झूले सा' में 'उपमा' है।

(४५) 'विश्वास रजत-नग' में 'रूपक' है।

कर्म

(१ पद्य) कर्म सूत्र संकेत सदृश थी
सोम लता तब मनु को;
चढ़ी शिंजिनी-सा, खींचा फिर
उसने जीवन-धनु को।

इसके पूर्वार्ध में 'उपमा' है। 'शिंजिनी सी' में भी 'उपमा' है और 'जीवन-धनु' में 'रूपक' है।

(५) जीवन की अविराम साधना
भर उत्साह खड़ी थी
ज्यों प्रतिकूल पवन में तरणी
गहरे लौट पड़ी थी।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है।

(६ पद्य) 'बने ताड़ थे तिल के'—इसमें 'छेकोक्ति' अलंकार है क्योंकि मुहावरे से भिन्न भाव की व्यंजना की गई है।

(११) मेधा के क्रीड़ा-पंजर का
पाला हुआ सुआ है।

इसमें मेधा को क्रीड़ा-पंजर बना कर सत्य में सुआ का आरोप किया गया है अतः 'परम्परित रूपक' है।

(१५) 'घूँट लहू का पीऊँ'—में 'लोकोक्ति' है।

(१६) 'सुख की बीन बजाऊँ'—में भी 'लोकोक्ति' है।

(१७) 'एक मृदुलता की, एक ममता की'—में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत श्रद्धा का उल्लेख न करके अप्रस्तुत मृदुलता और ममता का उल्लेख है।

(१८) 'वह आलोक किरन सी' और 'हलके घन सी' में 'उपमा' है।

---

४५ (लज्जा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १०६
१, ५ (कर्म सर्ग)—वही, पृष्ठ १०९
६ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ ११०
११, १५ (वही) —वही, पृष्ठ १११
१६, १७, १८ (वही) —वही, पृष्ठ ११२

(२१) 'आशा का कुसुम' में 'रूपक' है।

(४४) कामायनी पड़ी थी अपना
कोमल चर्म बिछा के;
श्रम मानो विश्राम कर रहा
मृदु आलस को पाके।

यहाँ श्रद्धा में श्रम की तथा चर्म में आलस की कल्पना की गई है अतः 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(४७) 'प्रकृति चंचला बाला' में 'रूपक' है।

(५६) विश्व विपुल आतंक त्रस्त है
अपने ताप विषम से;
फैल रही है घनी नीलिमा
अन्तर्दाह परम से।

इसके तृतीय चरण में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत आकाश का नाम न लेकर घनी नीलिमा का ही उल्लेख है।

उत्तरार्ध में 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि अहेतुभूत विश्व-संताप आकाश की नीलिमा में हेतु रूप से संभावित है।

(५७ पद्य) चक्रवाल की धुँधली रेखा
मानो जाती झुलसी।

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(५८) सघन धूम-कुण्डल में कैसी
नाच रही यह ज्वाला।
तिमिर-फणी पहने है मानो
अपने मणि की माला!

इसमें 'तिमिर-फणी' में 'रूपक' है और सम्पूर्ण पद्य में 'उत्प्रेक्षा' है अतः दोनों का 'संकर' है।

---

२१ पद्य (कर्म सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ ११३
४४ (वही) —वही, पृष्ठ ११८
५६ (वही) —वही, पृष्ठ १२१
५७, ५८ (वही) —वही, पृष्ठ १२१

(६०) 'कलुष चक्र सी नाच रही है' में चक्र से पीड़ा का साम्य होने से 'उपमा' अलंकार है।

(६१) एक बिन्दु, जिसमें विषाद के
नद उमड़े रहते हैं।

यहाँ बिन्दु एक छोटे पदार्थ को विषाद के नदों का आधार बतलाया गया है अतः 'अधिक' अलंकार है।

(६३) नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लिये हो ;

इसमें प्रस्तुत चन्द्र की मध्यगत श्यामता का उल्लेख न करके नील गरल का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है। और 'चन्द्र कपाल' में 'रूपक' है।

(६५) 'श्रम कण से वे तारे!' में 'उपमा' है।

(६६) सदा पूर्णता पाने को सब
भूल किया करते क्या?
जीवन में यौवन लाने को
जी-जी कर मरते क्या?

इसके पूर्वार्ध में 'विचित्र' और उत्तरार्ध में 'विरोधाभास 'अलंकार है।

(७२) 'रोदन बन हँसता क्यों' में 'विरोधाभास' है।

(७६ पद्य) नीचा हो उठता जो धीमे
धीमे निश्वासों में;
जीवन का ज्यों ज्वार उठ रहा
हिमकर के हासों में।

इस समूचे पद्य में 'वस्तूत्प्रेक्षा' है। 'जीवन का ज्वार' में 'रूपक' है। और 'हिमकर के हासों' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत मुख-सौन्दर्य का उल्लेख न कर केवल अप्रस्तुत का ही उल्लेख है।

(७७) रूप चंद्रिका में उज्ज्वल थी
आज निशा सी नारी।

यहाँ 'रूप चन्द्रिका' में 'रूपक' और 'निशा सी नारी' में 'उपमा' है।

(७८) 'वे मांसल परमाणु किरण से' में 'उपमा' है।

६०, ६१, ६३ (कर्म सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १२२
६५, ६६ (वही) —(वही), पृष्ठ १२३
७२ (वही) —(वही), पृष्ठ १२४
७६, ७७, ७८ पद्य (वही) —(वही), पृष्ठ १२५

(७६) 'विगत विचारों के श्रम-सीकर' में 'रूपक' है और पूरे पद्य में 'उत्प्रेक्षा' है क्योंकि श्रम-सीकरों में मोतियों की सम्भावना की गई है।

(८०) स्वस्थ व्यथा की लहरों सी
जो अंगलता थी फैली।

इसमें 'उपमा' अलंकार है।

(८३) जिसके हृदय सदा समीप है
वही दूर जाता है।

इसमें 'विरोधाभास' अलंकार है।

(८५) 'पल्लव सदृश हथेली' में 'उपमा' है।

(८७) अरी अप्सरे! उस अतीत के
नूतन गान सुनाओ।

इसमें 'विरोधाभास' है।

(९२) 'मादकता दोला' में 'रूपक' है।

(९८) मनु! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्ज्वल नव मानवता।

इसमें उज्ज्वल पद व्यंग्य परक है अतः यह विशेषण साभिप्राय होने से 'परिकर' अलंकार है।

(१०४ पद्य) वर्तमान जीवन के सुख से
योग जहाँ होता है;
छली अदृष्ट अभाव बना क्यों
वहीं प्रकट होता है।

इसमें 'विषम' अलंकार है क्यों कि सुख और अभाव दो विरुद्ध पदार्थों का सम्बन्ध बतलाया गया है।

(१०७) प्रलय पयोनिधि की लहरें भी
लौट गई ही होंगी।

इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

७६, ८०, ८३ पद्य (कर्म सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १२६
८५, ८७ (वही) —वही, पृष्ठ १२७
९२ (वही) —वही, पृष्ठ १२८
९८ (वही) —वही, पृष्ठ १३०
१०४ (वही) —वही, पृष्ठ १३१
१०७ (वही) —वही, पृष्ठ १३२

(१२७) शीतल प्राण धधक उठता है
तृषा तृप्ति के मिस से।

इसके पूर्व चरण में 'शीतल' गुण का 'धधक उठना' क्रिया से विरोध होने से 'विरोधाभास' अलंकार है और अन्तिम चरण में 'कैतवापह्नुति' है।

(१२८) दो काठों की संधि बीच उस
निभृत गुफा में अपने;
अग्नि-शिखा बुझ गई, जागने
पर जैसे सुख सपने।

इसमें प्रस्तुत मनु और श्रद्धा एवं कामाग्नि का उल्लेख न करके अप्रस्तुत दो काठों एवं अग्नि-शिखा का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है। अन्तिम चरण में 'उदाहरण' अलंकार है।

ईर्ष्या

(२ पद्य) 'लग गया रक्त था उस मुख में'—इसमें 'लोकोक्ति' है।

(५) 'वह इन्द्रचाप-सी झिलमिल हो'—इसमें 'उपमा' है।

(१३) बिखरे थे सब उपकरण वहीं
आयुध, प्रत्यंचा, शृंग तीर।

इसमें प्रथम तुल्ययोगिता' है क्योंकि आयुध, प्रत्यंचा, शृंग एवं तीर अनेक पदार्थों का एक ही 'बिखरे थे' क्रिया से सम्बन्ध है।

(१६ पद्य) 'केतकी गर्भ सा पीला मुँह' में 'उपमा' है।
'कंपित लतिका सी लिये देह' में भी 'उपमा' है।

(१८) सोने की सिकता में मानो
कालिंदी बहती भर उसास;
स्वर्गंगा में इंदीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास!

इसमें 'उत्प्रेक्षा मूलक सन्देह' है क्योंकि पीन पयोधरों पर बँधी श्याम पट्टी में सोने की सिकता में कालिन्दी की तथा स्वर्गंगा में इन्दीवर-पंक्ति की सम्भावना की गई है तथा दोनों सम्भावनाओं में निश्चय नहीं है कि कौन उपयुक्त है।

१२७, १२८ (ईर्ष्या सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १३६
२, ५ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १३९
१३ (वही) —वही, पृष्ठ १४१
१६, १८ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १४२

(३१) आशा के कोमल तंतु-सदृश
तुम तकली में हो रही भूल।

इसमें उपमा अलंकार है।

(४०) 'जो सुख चलदल सा रहा डोल' इसमें 'उपमा' है।

(५५) 'मेरे मधु जीवन का प्रभात' में 'रूपक' है।

(५६) जिसमें सौंदर्य निखर आवे
लतिका मे फुल्ल कुसुम समान।

इसमें 'उपमा' अलंकार है।

(६०) 'वह आवेगा मृदु मलयज सा' में भी 'उपमा' है।
'नव मधुमय स्मिति-लतिका-प्रवाल' में 'रूपक' है।

(६२) मेरी आँखों का सब पानी
तब बन जावेगा अमृत स्निग्ध;

यहां 'चतुर्थ विभावना' है क्योंकि आँसू अमृत के निमित्त अकारण हैं।

(६३) तुम फूल उठोगी लतिका सी' में 'उपमा है।
'सुख-सौरभ' में 'रूपक' है।

(६६ पद्य) 'बन सजल जलद वितरो न विन्दु'—इसमें 'रूपक' है क्योंकि श्रद्धा में जलद का आरोप किया गया है।

(७१) 'रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही!' में 'निर्मोही' विशेष्य साभिप्राय होने से 'परिकरांकुर' अलंकार है।

इड़ा

(१ पद्य) 'झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन'—में 'उपमा' है।
अस्तित्व चिरन्तन धनु से कब छूट पड़ा है विषम तीर।

---

३१ पद्य (ईर्ष्या सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ १४५
४० (वही) —वही, पृष्ठ १४८
५५, ५६ (वही) —वही, पृष्ठ १५१
६०, ६२ (वही) —वही, पृष्ठ १५२
६३, ६६ (वही) —वही, पृष्ठ १५३
७१ (वही) —वही, पृष्ठ १५४
१ (इड़ा सर्ग) —वही, पृष्ठ १५७

यहाँ चिरंतन अस्तित्व में धनु का और जीवन में तीर का आरोप होने से 'रूपक' अलंकार है।

(२) 'देखे मैंने वे शैल-शृंग' इत्यादि चार पंक्तियों में 'उल्लेख' अलंकार है क्योंकि शैल-शृंगों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है।

……वह जाती हैं नदियाँ अबोध
कुछ स्वेद बिन्दु उसके लेकर……।

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

मैं तो अबाध गति मरुत सदृश' में 'उपमा' है।

(३) 'लू सा झुलसाता दौड़ रहा' में 'उपमा' है।

(४) 'नभ नील लता' में 'रूपक' है।

कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आस पास।

इसमें 'भ्रान्तापन्ह्‌ति' है क्योंकि काँटों में कलियों का भ्रम हुआ और इस प्रकार उनका निषेध किया गया।

'उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर' में 'उत्प्रेक्षा' है।

पावस-रजनी में जुगनूगण को दौड़ पकड़ता मैं निराश
उन ज्योति कणों का कर विनाश!

इसमें 'अप्रस्तुत प्रशंसा' है क्योंकि अप्रस्तुत जुगनुओं से जीवन के तुच्छ सुखों की व्यंजना की गई है।

(५ पद्य) 'जीवन-निशीथ के अंधकार' के 'जीवन-निशीथ' पद-द्वय में 'रूपक' है और 'अंधकार' से प्रस्तुत 'निराशा' की व्यंजना होने से 'रूपकातिशयोक्ति' है।

'तू नील तुहिन जलनिधि बन कर' में 'रूपक' है।

ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है तुझ में ज्योति-कला
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुम चूर्ण भला।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है।

'माया रानी के केश भार' में 'रूपक' है।

(६) तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम-सा दुर्निवार।

इसमें 'उपमा' है।

---

२ पद्य इड़ा सर्ग —कामायनी, पृष्ठ १५७
३, ४ (वही) —वही, पृष्ठ १५८
५, ६ (वही) —वही, पृष्ठ १५९

'जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक चिनगारी सी उठती पुकार।

इसमें भी 'उपमा' है।

यौवन मधुवन की कालिंदी वह रही चूम कर सब दिगंत

मन-शिशु की क्रीड़ा नौकायें बस दौड़ लगाती हैं अनंत।

इसमें 'सांगरूपक' है।

'कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन!' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत निराशांधकार का उल्लेख न करके अप्रस्तुत अंजन का उल्लेख है।

(७) जिसमें सुख दुख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प सी हो नितान्त।

इसमें 'उपमा' है।

इस सूखे तरु पर मनोवृत्ति आकाश-वेलि सी रही हरी।

इसमे प्रस्तुत जीवन का उल्लेख न करके अप्रस्तुत तरु का उल्लेख है अतः ''रूपकातिशयोक्ति' है। 'आकाश-वेलि सी' में 'उपमा' है।

(८) नक्षत्र निरखते निर्निमेष वसुधा की वह गति विकल वाम।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि नक्षत्रों में निरखने की सम्भावना की गई है।

(९) मैं स्वयं सतत आराध्य आत्म-मंगल उपासना में विभोर
उल्लास शील मैं शक्ति-केन्द्र, किसकी खोजूँ फिर शरण और।

इसमें 'काव्यलिंग' अलंकार है क्योंकि 'फिर किसकी शरण खोजूँ' इसकी पुष्टि में 'मैं स्वयं' इत्यादि हेतु है।

(१३ पद्य) मानस जलनिधि का क्षुद्र यान।

इसमें 'परम्परित रूपक' है क्योंकि मानस में जलनिधि का और राग-भाव में क्षुद्र यान का आरोप किया गया है और ये परस्पराश्रित हैं।

(१४) तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय-प्रकाश न ग्रहण किया।

यहाँ 'प्रणय-प्रकाश' मे 'रूपक' है।

'जलन वासना' एवं 'भ्रम तम' में भी रूपक है।

(१५) सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि।

इसमें 'विशेषोक्ति' अलंकार है क्योंकि कारणभूत सब कुछ के पास रहने पर भी कार्यरूप तुष्टि का सदा दूर रहना वर्णित है।

(१६) चुम्बित हों आँसू जलधर से अभिलाषाओं के शैल-शृंग।

७, ८ (इड़ा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १६०
९ (वही) —वही, पृष्ठ १६१
१३, १४ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १६३
१५, १६ (वही) —वही, पृष्ठ १६४

इसमें आँसुओं में जलधर का और अभिलाषाओं में शैल-शृंगों का आरोप होने एवं उनका परस्पराश्रित होने से 'परम्परितरूपक' है।

जीवन-नद हाहाकार भरा, हो उठती पीड़ा की तरंग।

इसमें 'सांगरूपक' है।

'यौवन के दिन पतझड़ से सूखे' में 'उपमा' है।

दुख नीरद में बन इंद्रधनुष बदले नर कितने नये रंग।

इसमें 'परम्परित रूपक' है क्योंकि दुख में नीरद का और नर में इन्द्रधनुष का आरोप है और ये आरोप एक ही वाक्य में है।

(१७) आकांक्षा जलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सदा रक्त।

इसमें भी 'परम्परित रूपक' है।

(१८) 'संकुचित असीम अमोघ शक्ति' में विरोधाभास है क्योंकि संकुचित और असीम में एकान्त विरोध है।

व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बन्द।

इसमें भी 'विरोधाभास' है।

(२०) 'आशाओं में अपने निराश' में भी 'विरोधाभास' है।

(२१ पद्य) अभिशाप प्रतिध्वनि हुई लीन
नभ-सागर के अंतस्तल में जैसे छिप जाता महा मीन।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है।

मृदु मरुत लहर मे फेनोपम तारागण झिलमिल हुए दीन।

इसमें 'उपमा' है।

रजनी तम पुंजीभूत सदृश मनु श्वास ले रहे थे अशांत।

इसमें भी 'उपमा' है।

(२२) अद्‌भुत था ! निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद।

इसमें प्रस्तुत सरस्वती नदी का उल्लेख न करके पथिक का उल्लेख है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है।

(२३) जिसके मंडल में 'एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग'।

इसमें भी 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत सूर्य के स्थान पर अप्रस्तुत कमल का ही उल्लेख है।

१७, १८ २० (इड़ा सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १६५
२१, २२ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १६७
२३ (वही) —वही, पृष्ठ १६८

आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आंदोलन अमंद
करता, प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरंद।

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

उस रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुन्दर बाला।

इसमें 'उपमा' है।

(२४) "बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल' में 'उपमा' है।

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल।

इसमें भी 'उपमा' है।

'दो पद्म पलाश चषक से दृग' में भी 'उपमा है।

गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।

इसमें भी 'उपमा' है।

'कर्म-कलश' और 'विचारों के नभ' में 'रूपक' है।

(२५) मूर्छित जीवन-सर निस्तरंग नीहार घिर रहा था अपार
निस्तब्ध अलस बन कर सोई चलती न रही चंचल बयार
पीता मन मुकुलित कंज आप अपनी मधु बूंदें मधुर मौन।

इसमें 'सांगरूपक' है।

(२६ पद्य) सागर सा [illegible]तम तरंग सा खेल रहा वह महाकाल।

इसमें भी 'उपमा' है।

(२८) जिसकी छाया सा फैला है ऊपर नीचे यह गगन लोक।

इसमे भी 'उपमा' है।

(३०) चल पड़ी देखने वह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला।

इसमें 'फलोत्प्रेक्षा' है क्योंकि मलय वायु के चलने में कौतुक देखने का अभिप्राय निहित है।

लख लाली प्रकृति कपोलों में गिरता तारा-दल मतवाला।

इसमें 'समासोक्ति' अलंकार है क्योंकि यहां प्रकृति वर्णन से अप्रस्तुत आसक्त प्रेमी की व्यंजना भी हो रही है।

(३१) 'तुम इड़े उषा सी' मे 'उपमा' है।

'मनोभाव सोये विहंग' में 'रूपक' है।

---

२४ (इड़ा सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ १६८
२५ (वही) —वही, पृष्ठ १६९
२६, २८ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ १७०
३० (वही) —वही, पृष्ठ १७१
३१ (वही) —वही, पृष्ठ १७२

स्वप्न

(१ पद्य) 'अरुण जलज केसर' 'तामरस' और 'कुंकुम' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि क्रमशः प्रस्तुत सूर्य-लालिमा, सूर्य और लालिमा का उल्लेख न होकर इनका ही केवल उल्लेख है।

'क्षितिज भाल' में 'रूपक' है।

(२) कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा;

इत्यादि चारों पंक्तियों में 'हीन अभेद रूपक' है क्योंकि कामायनी में कुसुम, चित्र, प्रभात-शशि एवं संध्या का आरोप तो किया गया है परन्तु हीन रूप में।

(३, ४) 'जहाँ तामरस......', 'एक मौन वेदना......'

इत्यादि दोनों पद्यों में भी 'हीन अभेद रूपक' है।

(५ (पद्य) नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग-बालिका सी किरनें,

इसमें 'उपमा' है।

स्वप्न लोक को चलीं थकी-सी नींद सेज पर जा गिरने।

इसमें 'थकी सी' से 'हेतूत्प्रेक्षा' और नींद सेज पर जा गिरने से' फलोत्प्रेक्षा व्यंजित हो रही है।

'बिजली-सी स्मृति चमक उठी' में 'उपमा' है।

'लगे जभी तम घन घिरने' में 'रूपक' है।

(६) सन्ध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे।

यहाँ 'संध्या नील सरोरुह' में 'रूपक' है और 'श्याम पराग' में प्रस्तुत अंधकार का उल्लेख न होने से 'रूपकातिशयोक्ति' है।

'तृण गुल्मों से रोमांचित नग' में वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(८) 'अवकाश पटी' में 'रूपक' है।

(९) बुझ न जाय वह साँझ किरन सी दीप-शिखा इस कुटिया की।

इसमें 'उपमा' है।

(१४) वे आलिंगन एक पाश थे, स्मिति चपला थी आज कहाँ?

इसमें 'रूपक' है।

(१६) 'वे कुछ दिन जो हँसते आये' में 'स्मरण' अलंकार है।

(१७) रूठ चली जातीं रक्तिम-मुख, न सह जागरण की घातें;

१, २, ३, ४, ५ पद्य (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १७५
६, ८, ९ (वही) —(वही), पृष्ठ १७६
१४ (वही) —(वही), पृष्ठ १७७
१६, १७ (वही) —(वही), पृष्ठ १७८

इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि रातों के बीतने में 'जागरण की घातों को न सहने' की हेतुरूप से सम्भावना की गई है।

(१८) 'वन बालाओं' और 'वेणु' से 'रूपकातिशयोक्ति' की व्यंजना हो रही है क्योंकि प्रस्तुत लता एवं पक्षि-शब्दों का उल्लेख न करके इनका ही उल्लेख है।

(१९) मानस का स्मृति शतदल खिलता, झरते बिन्दु मरंद घने,
मोती कठिन पारदर्शी ये, इनमें कितने चित्र बने !
आँसू सरल तरल विद्युत्कण, नयनालोक विरह-तम में,
प्राण पथिक यह संबल लेकर लगा कल्पना-जग रचने।

इसमें 'मानस' शब्द में 'श्लेष' है। 'स्मृति शतदल' में 'रूपक' और 'मरंद बिन्दु' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत आँसुओं का उल्लेख नहीं है। 'मोती' में भी 'रूपकातिशयोक्ति' है और साथ ही आँसुओं में पारदर्शी शब्द से विशेषता बतला कर 'व्यतिरेक' अलंकार भी व्यक्त हो रहा है।

तृतीय चरण में 'साँग रूपक' है और चतुर्थ चरण में 'परम्परित रूपक' है।

(२० पद्य) 'अरुण जलज' और 'तुषार के बिन्दु' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत लाल आंखों एवं आँसुओं का उल्लेख न कर इन्हीं का उल्लेख है।

मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिये बिखरे।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

'विरह कुहू' और 'स्मृति के जुगनू' दो रूपक एक ही वाक्य में परस्पराश्रित होने के कारण यहाँ 'परम्परित रूपक' है।

(२१) आकांक्षा लहरी दुख-तटिनी पुलिन अंक में थी ढलती,

इसमें अनेक रूपक एक ही वाक्य में होने के कारण 'परम्परित रूपक' है। साथ ही प्रस्तुत 'निष्फलता' का उल्लेख न करके अप्रस्तुत 'पुलिन अंक' का ही उल्लेख किया गया है अतः 'रूपकातिशयोक्ति' है।

'जले दीप नभ के' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत तारों का उल्लेख न करके केवल दीपों का उल्लेख है।

'अभिलाष शलभ' में 'रूपक' है।

(२३) 'अरे पिता के प्रतिनिधि' इस सम्बोधन में 'परिकरांकुर' अलंकार है क्योंकि यह साभिप्राय है।

१८, १९ पद्य (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १७८

२०, २१, २३ (वही) —(वही), पृष्ठ १७९

(२५) मुक्त उदास गगन के उर में दाने बन कर जा झलके।

इसमें 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत तारों का उल्लेख न करके केवल अप्रस्तुत छालों का उल्लेख है।

दिवा-श्रांत आलोक-रश्मियाँ नील निलय में छिपी कहीं।

इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' है।

(२६) दूर किन्तु कितना प्रतिपल यह हृदय समीप हुआ जाता।

इसमें 'विरोधाभास' है क्योंकि दूर और पास में विरोध है।

(२७ वद्य) इड़ा अग्नि ज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।

इसमें 'पूर्णोपमा' है।

मनु का पथ आलोकित करती विपद-नदी में बनी तरी।

इसमें 'परम्परित रूपक' है।

(२८) वह सुन्दर आलोक किरन सी हृदय भेदिनी दृष्टि लिये,

इसमें 'उपमा' है।

मनु की सतत सफलता की वह उदय विजयिनी तारा थी,

इसमें 'रूपक' है।

(३६) देवदारु के वे प्रलम्ब भुज, जिनमे उलझी वायु-तरंग।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

मुखरित आभूषण से करते सुन्दर वाल विहंग।

इसमें 'उपमा' है।

(३६) इड़ा ढालती थी वह आसव, जिसकी बुझती प्यास नहीं।

इसमें 'विशेषोक्ति' अलंकार है क्योंकि कारण 'आसव' के होते हुए भी कार्य 'प्यास' का न होना वर्णित है।

'वह वैश्वानर की ज्वाला सी' में 'उपमा' है।

(४१) 'एक बाँकपन प्रतिपद शशि का' इसमें 'रूपक' है।

(४२) मधुर मराली! कहो 'प्रणय के मोती अब चुगती हूँ मैं।

'इसमें 'सांग रूपक' है।

२५, २६पद्य (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १८०
२७, २८ (वही) —(वही), पृष्ठ १८१
३६ (वही) —(वही), पृष्ठ १८२
३६ (वही) —(वही), पृष्ठ १८३
४१, ४२ (वही) —(वही), पृष्ठ १८४

(४३) मेरा भाग्य गगन धुँधला सा, प्राची पट सी तुम उसमें'

इसमें भी 'उपमा है।

(४४) उधर फैलती मदिर घटा सी अंधकार की घन माया।

इसमें भी 'उपमा' है।

(४५) 'वह अतिचारी, दुर्बल नारी' इसमें 'विषम' अलंकार है क्योंकि दो पदार्थों में विषमता होते हुए भी समन्वय वर्णित है।

संघर्ष

(७ पद्य) 'क्रोध और शंका के श्वापद' में 'रूपक' है।

(९९) 'ओ यायावर!' में 'परिकरांकुर' अलंकार है क्योंकि यह सम्बोधन साभिप्राय है।

(१०४) अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा दल सा झुँझलाता,

इसमें 'प्रतीप' अलंकार है।

रण-वर्षा में शस्त्रों-सा बिजली चमकाता।

यहाँ 'रण-वर्षा' में 'रूपक' है और शेष में 'प्रतीप' है।

(११३) रण यह, यज्ञ पुरोहित! ओ किलात औ' आकुलि!

'रण यह' में 'विधि' अलंकार है क्योंकि रण को साधारण खेल न समझने के अभिप्राय से उसे ऐसा कहा गया है।

'यज्ञ पुरोहित!' में परिकरांकुर' अलंकार है क्योंकि यह सम्बोधन साभिप्राय है।

(१२०) 'धूमकेतु-सा चला रुद्रनाराच भयंकर' में 'उपमा' है।

निर्वेद

(१ पद्य) 'उल्काधारी प्रहरी से ग्रह' में 'उपमा' है।

४३, ४४ (स्वप्न सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ १८४
४५ (वही) —(वही), पृष्ठ १८५
७ पद्य (संघर्ष सर्ग)—(वही), पृष्ठ १८९
९९ (वही) —(वही), पृष्ठ १९९
१०४ (वही) —(वही), पृष्ठ २००
११३ (वही) —(वही), पृष्ठ २०१
१२० (वही) —(वही), पृष्ठ २०२
१ पद्य (निर्वेद सर्ग)—(वही), पृष्ठ २०५

(३) पुर-लक्ष्मी खग रव के मिस कुछ कह उठती थी करुण कथा।
इसमें 'कैतवापन्हुति' अलंकार है।

(६) मधु पिंगल उस तरल अग्नि में शीतलता संसृति रचती।
इसमें 'विरोधाभास' है।

(११) अरे सर्ग-अंकुर के दोनों पल्लव हैं वे भले बुरे।
इसमें 'रूपक' अलंकार है।

(१६) छिन्न पत्र मकरंद लुटी सी ज्यों मुरझाई हुई कली।
इसमें 'उपमा' है।

(२४ गीत) 'चिर विषाद···', 'जहाँ मरु···',
'पवन की प्राचीर···', 'चिर निराशा···'।

गीत के इन सभी पद्यांशों में 'रूपक' है।

(३१) 'उषा अरुण प्याला भर लाती' में 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत 'सूर्य' का उल्लेख न करके अप्रस्तुत 'अरुण प्याला' का ही उल्लेख है।

(३२) व्यथित हृदय उस नीले नभ में छायापथ सा खुला तभी।
इसमें 'उपमा' है।

(३३) नवल हेम लेखा सी मेरे हृदय निकष पर खिंची भली।
यहाँ 'नवल हेम लेखा सी' में 'उपमा' और हृदय-निकष' में 'रूपक' है।

(३५) हृदय बन रहा था सीपी सा
तुम स्वाती की बूँद बनीं,
मानस-शतदल झूम उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं।

इसके प्रथम चरण में 'उपमा', दूसरे चरण में 'रूपक' और तृतीय एवं चतुर्थ में 'सांग रूपक' है।

---

३ (निर्वेद सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २०६
६ (वही) —(वही), पृष्ठ २०७
११ (वही) —(वही), पृष्ठ २१०
१६ (वही) —(वही), पृष्ठ २१२
२४ गीत (वही) —(वही), पृष्ठ २१७
३१, ३२ (वही) —(वही), पृष्ठ २२१
३३ (वही) —(वही), पृष्ठ २२२
३५ (वही) —(वही), पृष्ठ २२३

(३८) स्मिति मधुराका थी श्वासों से
पारिजात कानन खिलता;
गति मन्द मन्थर मलयज-सी
स्वर में वेणु कहाँ मिलता !

यहाँ 'स्मिति मधुराका थी' में 'रूपक' है। 'श्वासों से परिजात कानन-खिलता' में 'चतुर्थ विभावना' है क्योंकि अकार्य से कार्य की उत्पत्ति वर्णित है। तृतीय चरण में 'उपमा' है। और चतुर्थ मे 'व्यतिरेक' अलंकार है क्योंकि उपमान वेणु को उपमेय स्वर से घटकर बतलाया है।

(४०) 'कुछ मानस से' में मानस पद में 'श्लेष' है।

लघु जलधर का सृजन हुआ था जिसको शशिलेखा घेरे,

इसमे रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत भाव का उल्लेख न करके अप्रस्तुत जलधर का ही उल्लेख है। इसी प्रकार अनुरक्ति का उल्लेख न करके शशिलेखा का उल्लेख हुआ है।

उस पर बिजली की माला सी झूम पड़ीं तुम प्रभा भरी,

इसमें 'उपमा' है।

और जलद वह रिमझिम बरसा मन-वनस्थली हुई हरी।

इसमें 'रूपक' है।

(४२) तुम अजस्र वर्षा सुहाग की और स्नेह की मधु रजनी,

इसमें 'रूपक' है।

चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो तुम उसमें संतोष बनी।

इसमें भी 'रूपक' है।

(४५) 'बुद्धि तर्क के छिद्र' में 'रूपक' है।

(४८) यह प्रभात की स्वर्ण किरन-सी झिलमिल चंचल सी छाया।
इसमें 'मालोपमा' है।

---

३८ पद्य (निर्वेद सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २२४
४० (वही) —(वही), पृष्ठ २२५
४२ (वही) —वही, पृष्ठ २२६
४५ (वही) —वही, पृष्ठ २२८
४८ (वही) —वही, पृष्ठ २२९

दर्शन

(१ पद्य) चुपचाप खड़ी थी वृक्ष-पांत,
सुनती जैसे कुछ निजी बात।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि चुपचाप खड़े वृक्षों में बात सुनने की संभावना की गई है।

(४) 'शिशु-सा आता कर खेल अनिल' इसमें 'उपमा' है।

'नभ रजनी के जुगनू अविरल' में 'परम्परित रूपक' है क्योंकि नभ में रजनी का और तारों में जुगनुओं का आरोप है और वह परस्पराश्रित है।

(५) 'भावोदधि से किरनों के मग' में 'रूपक' है।
'स्वाती कन से बन भरते जग' में 'उपमा' है।

(६ पद्य) 'सुरधनु सा अपना रंग बदल' में 'उपमा' है।
'अवकाश सरोवर का मराल' में 'रूपक' है।

(८) वह इड़ा मलिन छवि की रेखा,
ज्यों राहु ग्रस्त सी शशि-लेखा

इसमें 'उदाहरण' और 'उपमा' का संकर हो रहा है।

(९) 'तुम जीवन की अन्धानुरक्ति' इत्यादि में 'उल्लेख' अलंकार है क्योंकि इड़ा का अनेकधा वर्णन है।

(२५) विच्छेद वाह्य, था आलिंगन—
वह हृदयों का, अति मधुर मिलन;
मिलते आहत होकर जल कन,
लहरों का यह परिणत जीवन।

इसमें 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है क्योंकि पूर्वार्द्ध में जो एक विशेष बात कही गई है उत्तरार्ध में उसका एक सामान्य बात से समर्थन किया गया है।

'जब दूर हुए तब रहे दो न' इसमें 'अतिशयोक्ति' अलंकार है क्योंकि भेद में भी अभेद का वर्णन है।

---

१ पद्य (दर्शन सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २३३
४ (वही) —वही, पृष्ठ २३४
५, ६ (वही) —वही, पृष्ठ २३५
८ (वही) —वही, पृष्ठ २३६
९ (वही) —वही, पृष्ठ २३७
२५ (वही) —वही, पृष्ठ २४५

(२६) कुछ शून्य बिन्दु उर के ऊपर,
व्यथिता रजनी के श्रम-सीकर;

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि बिन्दु रूप तारों में श्रम-सीकरों की सम्भावना की गई है।

(२७) शत शत तारा-मंडित अनन्त,
कुसुमों का स्तवक खिला वसन्त।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

'बहती माया सरिता ऊपर' में भी 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्योंकि आकाश गंगा में माया सरिता की सम्भावना है।

'उठती किरणों की लोल लहर' में 'रूपक' है।

(२८) 'था पवन हिंडोले रहा झूल' में 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

'वह गन्ध विधुर अम्लान फूल' में भी 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(२९ पद्य) थे चमक रहे दो खुले नयन,
ज्यों शिला-लग्न अनगढ़े रतन;

इसमें 'उपमा' है।

'यह क्या तम में करता सनसन' इत्यादि चार पंक्तियों में 'सन्देह' अलंकार है।

(३०) कुछ उन्नत थे वे शैल-शिखर,
फिर भी ऊँचा श्रद्धा का सिर;

इसमें 'अतिशयोक्ति' और 'व्यतिरेक' की संसृष्टि है।

'थी ढली स्वर्ण-प्रतिमा बन कर' में 'रूपक' है।

(३२) ये श्वापद से हिंसक अधीर,
कोमल शावक वह बाल वीर;

इसके प्रथम चरण में 'उपमा' है तथा दोनों चरणों में 'विषम' अलंकार है क्योंकि दो अनमेल वस्तुओं का सम्बन्ध वर्णित है।

'छुट गया हाथ से आह तीर' में 'लोकोक्ति' है।

---

२६ पद्य (दर्शन सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २४५
२७, २८ (वही)—वही, पृष्ठ २४६
२९, ३० (वही)—वही, पृष्ठ २४७
३२ (वही)—वही, पृष्ठ २४८

(३३) 'बन रहा तुम्हारा ऋण अब धन' में विरोधाभास' है।

(३४) 'तुम देवि ! आह कितनी उदार' इत्यादि में 'उल्लेख' अलंकार है क्योंकि श्रद्धा का अनेकधा वर्णन है।

(३५) 'जिसमें अनुशय बन घुसा तीर' में 'रूपक' है।

(३७) 'वह विष जो फैला महा विषम' इसमें 'रूपकातिशयोक्ति' है क्योंकि प्रस्तुत वासना का उल्लेख न करके अप्रस्तुत विष का ही उल्लेख है।

(३८) 'वह शून्य असत या अंधकार' में 'सन्देह' है।

(३९) तम जलनिधि का बन मधु मंथन,
ज्योत्स्ना सरिता का आलिंगन;

इसमें 'सांग रूपक' है।

(४३) हीरक गिरि पर विद्युत-विलास
उल्लसित महा हिम धवल हास।

इसमें 'वस्तूत्प्रेक्षा' अलंकार है।

रहस्य

(१) 'पथ थक कर है लीन' इसमे 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि पथ को लीन इसलिए कहा गया है कि वह थक गया है।

(२) श्रद्धा आगे मनु पीछे थे, साहस उत्साही स बढ़ते।

इसमें 'उपमा' है।

(३) छूने को अम्बर मचली सी, बढ़ी जा रही सतत ऊँचाई।

इसमें 'फलोत्प्रेक्षा' है क्योंकि ऊँचाई के बढने में अम्बर को छूने के लिए मचलने की सम्भावना की गई है।

(४) विक्षत उसके अंग प्रगट थे भीषण खड्ड भयकरी खाई।

इसमें 'रूपक' है।

३३, ३४ पद्य (दर्शन सर्ग)—कामायनी, पृष्ठ २४९
३५ (वही) —वही, पृष्ठ २५०
३७, ३८ (वही) —वही, पृष्ठ २५१
३९ (वही) —वही, पृष्ठ २५२
४३ (वही) —वही, पृष्ठ २५४
१, २, ३, ४ (रहस्य सर्ग) —वही, पृष्ठ २५७

(६) नीचे जलधर दौड़ रहे थे, सुन्दर सुरधनु माला पहने;
कुञ्जर-कलभ सदृश इठलाते, चमकाते चपला के गहने।

इसके द्वितीय चरण में 'रूपक', तृतीय में 'उपमा' और चतुर्थ में पुनः 'रूपक' है।

(७) प्रवहमान थे निम्न देश में, शीतल शत शत निर्भर ऐसे;
महाश्वेत गजराज गण्ड से, बिखरीं मधु धाराएं जैसे।

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(८) हरियाली जिनकी उभरी वे समतल चित्रपटी से लगते;
प्रतिकृतियों के बाह्य रेख से स्थिर नद जो प्रति पल थे भगते।

इसमें 'भ्रान्तिमान' अलंकार है।

(१८) 'श्रांत पक्ष...' इत्यादि में 'उपमा'।

(२५) 'उषा के कन्दुक सा सुन्दर' में 'उपमा' है।

(२६) 'शब्द स्पर्श...' इत्यादि में भी 'उपमा' है।

(२९) नव अलम्बुषा की व्रीड़ा सी खुल जाती है, फिर जा मुँदती।

इसमें भी 'उपमा' है।

(३१) भावचक्र यह चला रही है, इच्छा की रथनाभि घूमती;
नव रस भरी अराएँ अविरल, चक्रवाल को चकित चूमतीं।

इसमें 'सांग रूपक' है।

(३२ पद्य) ये अशरीरी रूप, सुमन से, केवल वर्ण गंध में फूले;
इन अप्सरियों के तानों के, मचल रहे हैं सुन्दर झूले।

इसमें 'अशरीरी' विशेषण साभिप्राय होने से 'परिकर' अलंकार है। 'सुमन से' पद से 'उपमा' व्यक्त हो रही है। उत्तरार्ध में 'पर्यायोक्त' अलंकार है क्योंकि 'वहाँ अप्सराओं के मधुर मत्त बना देने वाले गान होते रहते हैं' इस बात को उपर्युक्त चामत्कारिक ढंग से कहा गया है।

६, ७, ८ (रहस्य सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २५८
१८ (वही) —वही, पृष्ठ २६०
२५, २६ (वही) —वही, पृष्ठ २६२
२९ (वही) —वही, पृष्ठ २६३
३१, ३२ (वही) —वही, पृष्ठ २६४

(३५) नियममयी उलझन लतिका का, भावविटपि से आकर मिलना;
जीवन वन की बनी समस्या, आशा नभ कुसुमों का खिलना।

इसमें 'साँग रूपक' है।

(३६) अमृत हलाहल यहाँ मिले हैं, सुख दुख बँधते एक डोर हैं।

इसमें 'विरोधाभास' अलंकार है।

(५८) न्याय तपस ऐश्वर्य में पगे, ये प्राणी चमकीले लगते;
इस निदाघ मरु में सूखे से, सोतों के तट जैसे जगते।

इसमें 'उदाहरण' अलंकार है।

(६४) वे संकेत दंभ के चलते, भ्रू चालन मिस परितोषों से !

इसमें 'कैतवापन्हुति' है।

आनन्द

(५ पद्य) 'गैरिक वसना संध्या सी' इसमें 'उपमा' है।

(११) घन अपनी प्याली भरते, ले जिसके दल से हिमकन।

इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है क्योंकि बादलों के जल में हिमकणों की कारण रूप में सम्भावना की गई है।

(२५) यह व्यर्थ रिक्त जीवन घट पीयूष सलिल से भरने।

यहाँ 'जीवन-घट' और 'पीयूष सलिल' में 'रूपक' है।

(३२पद्य) मरकत की वेदी पर ज्यों, रक्खा हीरे का पानी;
छोटा सा मुकुर प्रकृति का, या सोयी राका रानी।

इसके दोनों ही अर्धांशों में 'वस्तूत्प्रेक्षा' है। साथ ही 'उल्लेख' और उत्तरार्द्ध में 'सन्देह' भी है।

(३३) कैलास प्रदोष प्रभा में स्थिर बैठा किसी लगन में।

इसमें भी 'वस्तूत्प्रेक्षा' है क्यों कि अचल कैलास में स्थिर बैठने की सम्भावना की गई है।

३५, ३६ (रहस्य सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २६५
५८ (वही) —वही, पृष्ठ २७०
६४ (वही) —वही, पृष्ठ २७१
५ पद्य (आनन्द सर्ग)—वही, पृष्ठ २७७
११ (वही) —वही, पृष्ठ २७६
२५ (वही) —वही, पृष्ठ २८३
३२, ३३ पद्य (वही) —वही, पृष्ठ २८४

(७२) सुख सहचर दुःख विदूषक, परिहास पूर्ण कर अभिनय,
सबकी विस्मृति के पट में, छिप बैठा था अब निर्भय।

यहाँ दुख में विदूषक का और विस्मृति में पट का आरोप होने से 'सांगरूपक' है।

(७३) 'मृदु मुकुल बने झालर से' में 'उपमा' है।

रस भार प्रफुल्ल सुमन सब, धीरे धीरे से बरसे।

इसमें 'हेतूत्प्रेक्षा' है क्योंकि सुमनों के बरसने में रसभार की कारण रूप से सम्भावना की गई है।

(७४) हिम खंड रश्मि मंडित हो, मणि दीप प्रकाश दिखाता;
जिनसे समीर टकरा कर, अति मधुर मृदंग बजाता।

इसके पूर्वार्ध में 'उपमा' और 'उत्तरार्ध' में 'उत्प्रेक्षा' है।

(७७) मांसल सी आज हुई थी, हिमवती प्रकृति पाषाणी;

इसमें 'विरोधाभास' अलंकार है क्यों कि मांसल और हिमवती पाषाणी में विरोध है।

(७८) वह चन्द्र किरीट रजत नग, स्पन्दित सा पुरुष पुरातन;

यहाँ 'चन्द्र किरीट' में 'रूपक' तथा शेष में 'उपमा' है।

(८०) 'समरस थे जड़ या चेतन' में 'विरोधाभास' अलंकार है।

इस प्रकार इस काव्य में अनेक अलंकारों ने इसकी काव्य-कला के सौंदर्य में महती श्री-वृद्धि की है।

७२, ७३ पद्य (आनन्द सर्ग) —कामायनी, पृष्ठ २९३
७४, ७७, ७८, ८० (वही) —वही, पृष्ठ २९४